रु॰15.00

12/13 अंक 12/13

अक्तूबर '97-मार्च '98

चन्द्रताल

लाहुल-स्पीति की साहित्यिक-सांस्कृतिक त्रैमासिक

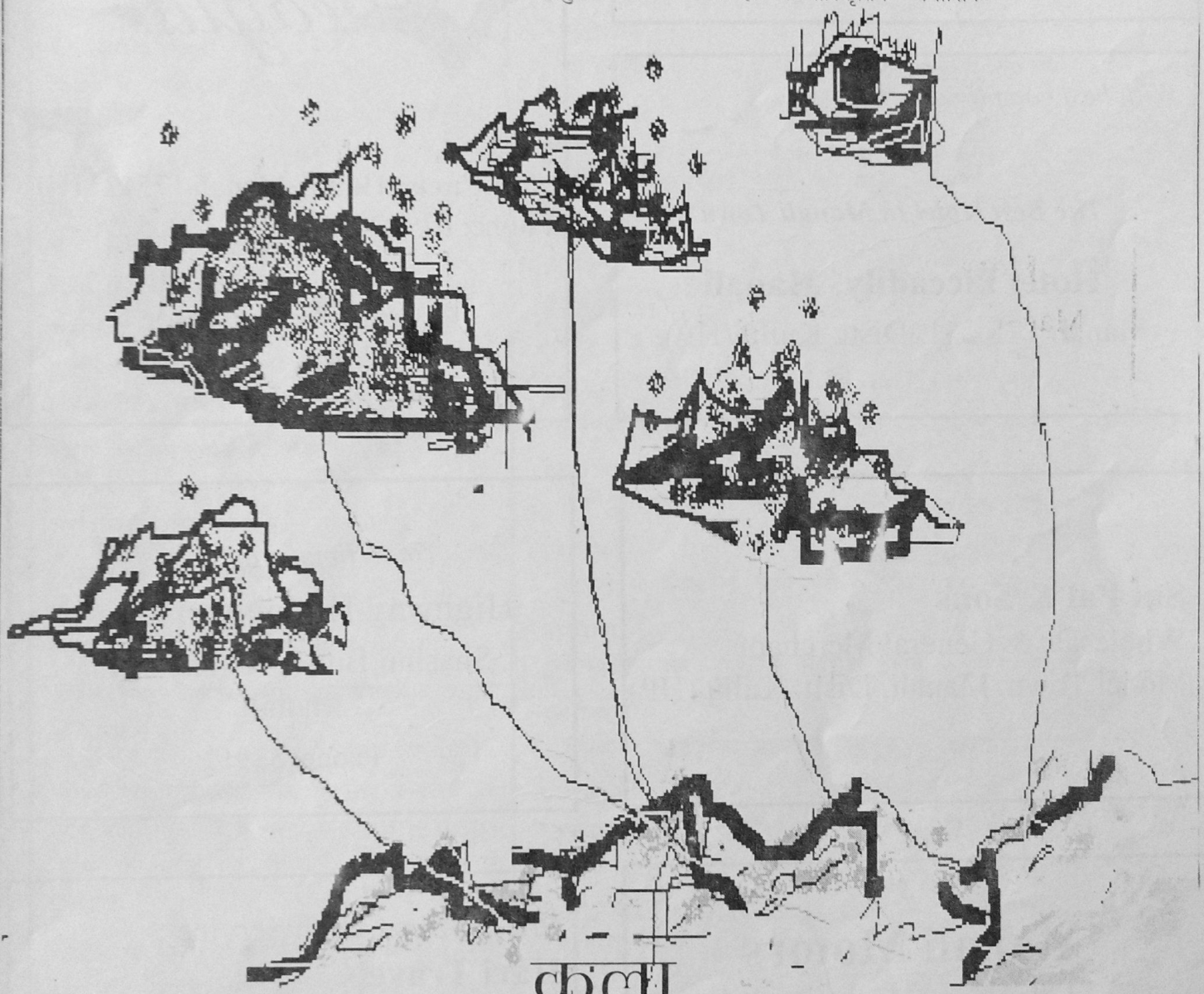

कला

एक मुकम्मल पहाड़ बनाने की ज़िद

अजेय

संस्थापक:
स्वंगला एरतोग,
लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860.

संपादक:
सुश्री डॉ० छिमे शाशनी

उप संपादक:
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादक मण्डल:
के० अंगरूप लाहुली
आचार्य प्रेम सिंह शौण्डा,
तोबदन

सम्पर्क:
संपादक - चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू-175101 (हि०प्र०) फोन: (01902)-66331

वितरण प्रबन्धक:
रणवीर चन्द ठाकुर, दूकान नं० 19, सामने स्नो व्यू होटल,
मॉडल टाउन, मनाली-175131 (हि०प्र०)

लाहुल में सब्स्कृप्शन व वितरण एजेंट
श्री रूपसिंह वारपा, लक्ष्मी बुक शॉप,
अपर केलंग, लाहुल-स्पीति - 175 132

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि:
वार्षिक : साठ रुपये
एक प्रति : पन्द्रह रुपये

पत्रिका पूर्णत: अव्यावसायिक तथा संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा, नमन, अ०बा० कुल्लू से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

आवरण एवं लेआउट
बलदेव कृष्ण घरसंगी

आवरण रेखा-चित्र
सुरेन्द्र शौण्डा

क्रम

संपादकीय 2

पाठकीय 3

कसौटी 6
कृषि-नीति निर्धारण की आवश्यकता
आरक्षण-क्या अभी भी इसकी आवश्यकता है? *बलदेव घरसंगी*

कविता 7
सखी *शेखर*
बचपन *आचार्य प्रेम सिंह*
मेरे पहाड़ *प्रेम चन्द*
उई आयों... *सुरेश विद्यार्थी*
दूरियां *यूसुफ़* 15

कला
एक मुकम्मल पहाड़ बनाने की ज़िद *अजय* 8

लोक गाथा 10
वरदान के गीत *के० अंगरूप लाहुली*

क्षेत्रीय दृष्टि 11
लाहुल में स्कीइंग की सम्भावनाएं *ज्ञालछन ठाकुर*

संस्कृति
धर्मचक्र विहार तावो *छेरिंग दोर्जे* 12

लोक भाषा 16
लाहुली बोलियों के संदर्भ में.... *बनारसी लाल*

स्वास्थ्य 19
लाहुल में कैंसर के बढ़ते पंजे *डा० रंजोत वंद*

पर्यावरण
जनजातीय क्षेत्र स्पीति में विभिन्न ईंधनों.. *भूपिन्दर राणा* 20

वाणिज्य
विपणन प्रणाली का महत्त्व *यादराम डोगरा* 22

समाज
गोंधला क्षेत्र - धर्म एवं रहन-सहन *सुनीता मनेपा* 26

कहानी
खत जो शहर से आएगा *दोर्जे डुरूप* 30
अड़ला राक्षस *सोनम फुकतल* 24

विविध
आत्म मूल्यांकन *टशी अंगरूप* 5
मेहंदी से ढके हाथ *सरला* 9
कर्म और भाग्य *वी०के० अंगमो* 25
शिव टिब्बा *प्रेम शावला* 33

संपादकीय

कुछ लेखों के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रचलित रिवाज़ों को पाठकों द्वारा संस्कृति के रूप में वर्णित किए जाने पर संस्कृति को स्पष्ट करने की अनिवार्यता अनुभव हो रही है। संस्कृति आज बहुत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, इस शब्द की व्याख्या धार्मिक, साहित्यिक, इतिहासवेत्ता विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से की है। यहां विद्वानों के मतों को प्रस्तुत करना या संस्कृति को व्याख्यायित करना हमारा लक्ष्य नहीं, वरन् संस्कृति की मूल अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास है। संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अभिप्राय परिमार्जन, शुद्धि, संशोधन अथवा आम्यंतर रूप से प्रकाशन है। चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है उसे वह संस्कृति के रूप में पा जाता है। यह मानव जीवन की विशिष्ट पद्धति तथा विकास की दिशा में सतत गतिशील किन्तु स्थायी जीवन व्यवस्था है। इस के द्वारा उन सब प्राप्तियों और संस्कार का ज्ञान होता है जिस के आधार पर वह सामाजिक जीवन व्यवस्था अथवा आदर्शों का निर्माण करता है। संस्कारों और सोच का सम्बन्ध हमारी भावना, निष्ठा और आस्था से होता है और यही संस्कार हमारी उन्नति के मार्गों को प्रशस्त करते हुए सर्वांगीण जीवन का विकास करते हैं। संस्कृति मनुष्य के आन्तरिक तत्व का परिष्कृत रूप है तथा मानव के व्यक्तित्व की विकास की प्रक्रिया भी। इस प्रकार मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन अन्तर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिस के अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं। संस्कृति वह मूल जीवन-दृष्टि है जो मनुष्य के समस्त आचार-विचार और भावना को प्रभावित करती है; यही हमारी अस्मिता की पहचान भी है। कुछ परम्परा को संस्कृति का पर्याय मानते हैं। यह सही है कि संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है और परम्परा ही आगे चल कर संस्कृति कर रूप धारण करती है; किन्तु वही परम्परा संस्कृति के रूप में परिणत होती है जिस में जनकल्याण की भावना हो, जो जन भावनाओं का द्योतक हो। श्रेष्ठ कल्याणकारी परम्पराओं को आत्मसात कर ही श्रेष्ठ समाज का निर्माण सम्भव है, स्वस्थ परम्पराएं ही समाज को नई दिशा की ओर अग्रसर कराने में सहायक होती हैं। रूढ़ियों एवं कुण्ठाओं से ग्रस्त समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता।

परिवर्तन जीवन का नियम है, बदलते समय के साथ बदलना जीवन की गतिशीलता का परिचायक है, इस के लिए अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का त्याग भी अनिवार्य है। पहले ज़माने में कुछ प्रथाएं चली, जो तत्कालीन समाज की आवश्यकता थी, विवशता थी; पर वर्तमान स्थिति में ऐसी कोई विवशता नहीं। जब हम आज कई क्षेत्रों में आधुनिकता को अपना रहे हैं, तो कुछ रूढ़ियों को त्यागने में संकोच कैसा? आज की स्थिति में संकीर्णता का त्याग कर उदात्तता को अपनाना समय की मांग है तथा समाज के लिए श्रेयस्कर भी। रूढ़ियों से चिपके रहना गतिहीनता का द्योतक है, गतिहीनता उस ठहरे और गंदे पानी की तरह होता है जो सड़न और दुर्गन्ध देने लगता है, बीमारियां फैलाने लगता है। परम्परा का सही मूल्य तभी चुकाया जा सकता है जब हम उस से आगे बढ़ें। पुरानी परम्परा या कहो रूढ़ियां लक्ष्मण-रेखा नहीं हैं; इन्हें समाज के कल्याण के लिए लांघना ही पड़ता है कभी-कभी। पूर्वाग्रह के कारण गुणात्मक परिवर्तन को अस्वीकार करना नि:सन्देह सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला सिद्ध हो सकता है।

– संपादक

डॉ० पी०डी० लाल का हॉप्स पर लेख अच्छा लगा। डॉक्टर साहब जैसे लोग जो बाहर रहते हुए अलग व्यवसाय के बावजूद लाहुल के इस प्रमुख समस्या पर विचार रखते है बहुत खुशी की बात है। काश, हमारे स्थानीय नेताओं के दिलों में भी हॉप्स के प्रति (यानि सच्चे अर्थों में लाहुल के प्रति) कुछ जागता तो क्या ही अच्छा होता।

कृषक संघ की गुहार शत-प्रतिशत सही है। आज लाहुल में ऐसा कोई घर नहीं है जिसे मकान एवं दो वक्त की रोटी की समस्या हो। कृषक संघ द्वारा उठाई मांगें पूरे लाहुल से सम्बन्ध रखते है और आज ज़रूरत इन्हीं चीज़ों की है। सरकार चाहे जनजातीय उप-योजना से हो या दूसरी तरफ से, भरपूर पैसा देती है। इस कारण बाकी छोटे-मोटे काम चले रहते है। ज़रूरत है इन प्रमुख मांगों को पूर्ण करना जैसे हॉप्स, हवाई पट्टी या सुरंग।

हमारे स्थानीय नेताओं को भी चाहिए कि एक-दो साल बाकी छोटी-बड़ी समस्याओं से अपना ध्यान हटा कर इन प्रमुख मांगों की तरफ लगते तो अच्छा होगा। हक़ीकत तो यह है इन प्रमुख मुद्दों पर पूरा लाहुल एक जुट नहीं है। चाहे आम जनता हो या आम नेतागण। घाटीवाद जैसी बुरी धारणाओं ने लाहुल को जकड़ लिया है। जो लोग हॉप्स पैदा नहीं करते उन्हें इस से कोई लेना-देना नहीं है।

अगर कोई लाहुल के सम्पूर्ण विकास और तरक्की को मद्देनज़र रखता, हॉप्स का सफल होना पूरे लाहुल के लिए हितकर है। कैसे? इस कारण नकदी फसलें (आलू, हॉप्स, मटर) जहां-जहां जो अच्छा पैदा होता है वहां वह लोग ज़्यादा लगाएं, जहां कम होता है वह फसल कम लगाएं। इस करण किसी भी फसल की कुल पैदावार कम होगी और बाज़ार में अच्छी कीमत मिलेगी। इस तरह पूरे लाहुल में नकदी फसलों का उत्पादन संतुलित हो जाता है। मगर क्या हम लाहुल वासियों में इतनी दूर तक सोचने की क्षमता है? लाहुल के बुद्धिजीवी वर्ग इन सब में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

शकुन जी का *'लाहुल के माथे पर कलंक'* गले से नीचे उतर नहीं पाया। शादी का तीसरा तरीका (जिस पर उन्हें आपत्ति है) यह हमारा सदियों से चला रीति-रिवाज़ है। हर समाज में कुछ अपने-अपने रीति-रिवाज़ होते है। बिना लड़की की ईच्छा के आज के समय में वैसे तो ऐसी शादी होती ही नहीं है। शायद 10-20 सालों के अन्तराल में कभी एक इस तरह की घटना सामने आती होगी। दूसरी तरफ आज के मंहगाई के युग में यह शादी का (अगर लड़की तैयार हो) सरल तरीका है। आज लाहुल की नियोजित शादी में कितना आर्थिक बोझ पड़ता है यह तो हम सभी जानते है। *'क्या लड़कियां कोई वस्तु है, क्या कोई मान सम्मान नहीं है?'* शकुन जी, जितना सम्मान लाहुली समाज में लड़कियों एवं औरतों को मिलता है इतना किसी भी समाज में शायद ही मिलता होगा।

बलदेव जी का कला वाला लेख कुल पाठकों में से शायद ही एक-आध ने पढ़ा होगा।

डॉ०रंजीत वेद, उदयपुर

मै यह पत्र *चन्द्रताल* के लिए निम्न सुझाव और टिप्पणियों सहित भेज रहा हूं :

क. प्रकाशन का विपणन संतोषजनक नहीं है। मुझे साल भर से पत्रिका *नहीं* मिली है। मै तो यह समझ बैठा था कि आपके प्रयास की अब तक मृत्यु हो चुकी होगी। मुझे यह जान कर खुशी हुई कि प्रकाशन अभी ज़िन्दा है। हम चाहते है कि यह जारी रहे।

ख. मै देख रहा हूं कि पत्रिका में प्रयुक्त हिन्दी बहुत कठिन है - एक आम लाहुली की समझ से बाहर। मेरा सुझाव है कि आप आम बोल-चाल के शब्द/ हिन्दोस्तानी/ आसान हिन्दी का प्रयोग करें। हम प्रकाशन के फायदों को संस्कृत-युक्त हिन्दी के द्वारा कत्ल न करें।

(अंग्रेज़ी से अनुवाद)

-कर्नल प्रेम (सेवानिवृत्त)

जब मैंने *चन्द्रताल* के नये अंक को पढ़ा तो उसमें शकुन्तला लोप्पा जी द्वारा लिखित रचना को पढ़कर अत्यन्त दु:ख हुआ, जिसमें उन्होंने लाहुल में होने वाली शादियों का विरोध किया है और युवा पीढ़ी से इस रिवाज को परिवर्तित करने का आह्वान किया है। मै नहीं मानता कि हमारी इस विवाह की पद्धति में कोई दोष है। दोष है तो सिर्फ हमारे सोचने में। उन्होंने उस लेख में लिखा था कि जब वह लाहुल में हाने वाली शादी के बारे में बाहर के लोगों से सुनते है, तो उन्हें शर्म होती है। मै यह सोचकर हैरान हूं कि जो अपनी सस्कृति के बारे में सुनकर लज्जा महसूस करते है वह आगे जाकर अपनी संस्कृति को ख़ाक पहचानेंगे।

आपके पिछले अंक में राहुल वैद द्वारा *'भागा घाटी का त्यौहार'* बहुत ही अच्छा लगा। इस प्रकार के लेख हमारी संस्कृति से बाहर के लोगों को परिचित कराते है।

प्रमोद कुमार, डिग्री कॉलेज, कुल्लू

बुद्धिजीवियों की सोच का एक जीता जागता परिणाम *'चन्द्रताल'* का प्रकाशन में आना है। सांस्कृतिक धरोहर

को सुरक्षित रखने की ओर एक रचनात्मक और प्रशंसनीय पहल के लिए *'चन्द्रताल'* के मुख्य सम्पादक, उप सम्पादक, सम्पादक मण्डल तथा अन्य सज्जन जो समय-समय पर थोड़ा वक्त निकाल कर इस पत्रिका को अमली जामा पहनाने में योगदान देते हैं, बधाई के पात्र हैं। अपेक्षा की जाती है कि इस पत्रिका की चिरायु के लिए हम सभी का इसी तरह सहयोग मिलता रहेगा और इसे और अधिक आकर्षक, मनोरंजक तथा तथ्यों और वास्तविकता के करीब लाने में हम सब सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

पत्रिका का त्रैमासिक (तृतीय अंक) जनवरी-मार्च (1995) पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उत्सुकता और बेसब्री से प्रतीक्षा थी पत्रिका के इस अंक के प्राप्त करने और पढ़ने की। *'श्रद्धांजलि'* कविता को पढ़ने की दिली तमन्ना थी। सो वह समय आ गया जब पत्रिका मुझे सौंपी गई। भूली-बिसरी यादों की एक शृंखला सी बन गई मन में, पढ़कर इस कविता को। सही श्रद्धांजलि होगी उन दिवंगत आत्माओं को, बन कर इस पत्रिका का एक अभिन्न पाठक।

टशी अंगरूप गड़फा
खोपनी (कुल्लू)

'सहकार विशेषांक' के निबन्ध सामान्य लगे। शायद अपेक्षाएं अधिक थीं। सामान्य इस अर्थ में कि आप पढ़ना शुरू करें तो पढ़ते ही चले जाईये। कहीं भी कोई बिन्दू ऐसा नहीं आता जहां आपके विचार अटक जाते हों। जो आपको कुछ सोचने पर मजबूर कर देता हो। कोई ख प्रभाव नहीं छोड़ पाए ये लेख। और तो और, निबन्धों में कोई नयापन नहीं है। सब के सब एक जैसे। सिवा एक शीर्षक *'बेस्हि:'* के। लेखक ने लोक जीवन तथा लोक मानस में गहरे पैठ कर चन्द सुन्दर रत्न पाठकों के सामने रखे हैं और अपनी मौलिक सोच और रचनात्मकता का सहारा लेकर विषय के साथ न्याय किया है। दरअसल जो सहकार भावना पहाड़ी कबीलों के रक्त में मौजूद है, जिसकी अभिव्यक्ति 'बेस्हि:' तथा 'जोआर' आदि प्रथाओं के रूप में ग्राम्य समाज में देखी जा सकती हैं, उस मूल भावना (प्रवृत्ति) के बिना तिथियों, तथ्यों, घटनाओं, नामों और आंकड़ों का यह मकड़जाल निरर्थक है। *चन्द्रताल* और एस० लोन्छेन्पा दोनों ही बधाई स्वीकार करें।

कविताओं में *'सखी'* और *'तलाश'* अच्छी लगी। शब्दों का चयन सहज, स्वाभाविक एवं विषयानुकूल है। अक्सर *चन्द्रताल* की कविताओं में शब्दाडम्बर के कारण *थीम* और कथन नेपथ्य में चले गए हैं। या फिर कहीं-कहीं अत्यधिक सपाट बयानी के कारण कविताएं गद्यात्मक हो गई हैं। *'सखी'* में लय और अन्विति को पकड़ने का पूरा प्रयास नज़र आता है। यद्यपि तकनीकी दृष्टि से अभी इन में काफी सुधार की गुंज़ाईश है फिर भी काफी हद तक ये कविताएं संतुलित लगीं, और अभिव्यक्ति में ईमानदार।

'लोकगाथा' मज़ेदार थी। एसी कितनी ही बाल कथाएं हमने बचपन में सुनी हैं। क्या घुरे आदि के साथ-साथ इनका डॉकयूमेंटेशन भी ज़रूरी नहीं है? *'योर त्यौहार .....'* शीर्ष में अनछुए विषय को उजागर किया गया है। लेकिन इस इस छोटे से लेख से कार्य सम्पन्न नहीं हुआ है। 'योर' पर एक विस्तृत शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। इसी तरह कुं:स्, खोगल: (हालडा), दाछंग, गोची, मेशुल, सा:मि (लिंडूर), छ्छ़: (गुरु घंटाल) इत्यादि स्थानीय उत्सवों की अत्यन्त रोचक समाज शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं हो सकती हैं। लाहुल की उच्च शिक्षा प्राप्त युवा पीढ़ी से मेरा निजी आग्रह है कि थोड़ा सा समय और थोड़ी ऊर्जा इस महायज्ञ में आहुति के रूप में समर्पित करें। अपने खोए हुए अस्तित्व का साक्षात्कार करें।

अन्त में सतीश शाशनी के लिए कुछ शब्द! इन का लिखा एक गद्यांश *चन्द्रताल* के 4-5वें अंक में भी छपा था जिसने मेरा ध्यान पकड़ा है। हां, भाषा ज़रूर कुछ ऊबड़-खाबड़ है। *'कॉलजेट'* कविता से अगर उपदेशात्मक अंश निकाल लिए जाएं तो वह अच्छी व्यंग्य कविता बन जाएगी। साहित्य में व्यंग्यार्थ का महत्व सब से अधिक है। अभिधा में साहित्य नहीं चलता, चाहे वह कविता हो, कहानी या निबंध। व्यंजना के बिना साहित्य और अन्य कलाएं भी अधूरी हैं।

सतीश शाशनी की भाषा और टेकनीक कुछ *क्रूड*, कुछ खुरदरी, थोड़ी अनगढ़ है। लेखन के निरंतर अभ्यास तथा साहित्य के अधिकाधिक अध्ययन से इन की शैली में अपेक्षित निखार आ सकता है।

आवश्यकता से अधिक विस्तार में जा रहा हूं । शायद मुझे इतना अधिक नहीं लिखना चाहिए। लेकिन लिखे बिना रहा नहीं जा सकता। आलोचना ज़रूरी है। तभी कुछ सुधार संभव है। मैंने केवल उन कृतियों को चुना है जिन में कुछ संभावनाएं हैं। एक दम से *होपलेस* रचनाओं को छुआ भी नहीं है। साहित्यिक रचनाओं की आलोचना का एक पन्ना पत्रिका में होना चाहिए। इसमें आप लोग (संपादक/प्रकाशक) लेखकों की त्रुटियों की ओर संकेत करें तो अच्छा और स्वस्थ लेखन संभव हो पाएगा।

अजेय, केलंग

आत्म मूल्यांकन

-टशी अंगरूप

गीता में श्री कृष्ण का अर्जुन को दिया गया उपदेश *'कर्म किए जा फल की इच्छा मत कर'* अर्थपूर्ण ओर तर्क संगत लगता है। कितनी गूढ़ और तार्किक बातें कही गई हैं इन थोड़ी से 6-7 शब्दों के एक वाक्य में, पर भौतिकतावाद ओर सांसारिक बन्धन से जुड़े हुए इस स्वार्थपूर्ण जीवन में क्या ये तार्किक और उस समय की प्रासंगिक बातें सही उतरती हैं क्योंकि व्यक्ति इच्छा करता है, कुछ पाने की योजनाएं बनाता है, साधन जुटाता है और प्रयास करता है उस इच्छा की पूर्ति करने के लिए, नि:सदेह परिणाम कुछ भी निकले पर उसके प्रयास में एक स्वार्थ छिपा है, एक इच्छा है, एक अभिलाषा है जिसकी पूर्ति के लिए वह निरन्तर संघर्षरत रहता है। सब सम्भव साधन जुटा लेता है और उसके अनुरूप प्रयत्नशील रहता है। लेकिन जहां सामूहिक उत्तरदायित्व की बात आती है, उस विशेष समय में व्यक्ति अपनी असमर्थता व्यक्त करने लगता है और जिस के लिए तरह-तरह की अटकलें लगाने लगता है। परिणामस्वरूप सामूहिक उत्तरदायित्व को निभाकर जिस उद्देश्य या परिणाम की अपेक्षा की जाती है और उसकी प्राप्ति के लिए किए गए वे प्रयास व्यर्थ साबित हो जाते हैं। उस अमूक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जो योजनाएं बनाई जाती हैं, साधन जुटाए जाते है, वे सब निष्फल हो जाते हैं। परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी की धीमी रह जाती है। समय की आवश्यकता है कि हर व्यक्ति अपनी ज़िम्मेवारी को भली भान्ति समझने का प्रयास करे, उसे अर्न्तमन से स्वीकार करे, उसके प्रति निष्ठा रखे और उस अमुक ज़िम्मेवारी को ईमानदारी से निभा कर उद्देश्य की प्राप्ति को सम्भव बनाए, अन्यथा वक्त गुज़ारने वाली बात बन जाती है। सही अर्थो में कर्त्तव्य के प्रति सजग रह कर उसके लिए निष्ठावान बनकर और तत्पश्चात् ईमानदारी से उसे निभाकर ही हर कार्य अविलम्ब, बिना अड़चन के पूरे हो सकते हैं। अड़चनें और रुकावटें तो हम स्वयं पैदा करते है और बिना चिन्तन किए उन रुकावटों के बारे सोचने लगते है जिनके लिए हम स्वयं ज़िम्मेवार होते है। कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा, ईमानदारी

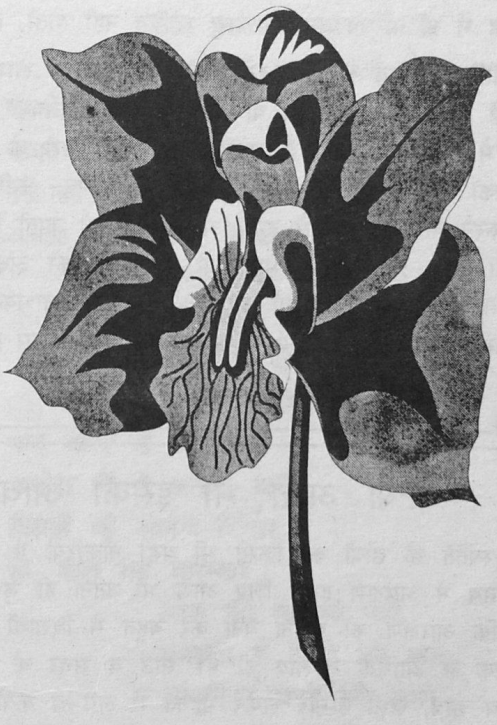

और समर्पण की कमी तथा लापरवाही उन रुकावटों को पैदा करती है, जिनका ठीक समय पर समाधान न निकाला जाए तो समस्या गम्भीर बन जाती है - अपने लिए समाज के लिए और अन्तत: सम्पूर्ण मानव जाति के लिए।

अनुशासन, कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठा, समर्पण की भावना, ईमानदारी, सुनियोजित कार्यप्रणाली तथा आशावादी होना सफलता का एक मापदण्ड है। इसके अतिरिक्त आत्म-मूल्यांकन भी तो बहुत ज़रूरी है, कि हम कर्त्तव्य के प्रति कितने जागरूक है। दूसरों की आलोचना और निन्दा न करते हुए हमें स्वयं के बारे जानना बहुत ज़रूरी है। यदि हम अपनी जगह ठीक काम कर रहे है तभी हम दूसरों के बारे टिप्पणी कर सकते है। संस्था-रूपी मशीन के सभी छोटे-बड़े पुर्ज़ों का ठीक होना अनिवार्य है। पुर्ज़ों में आपसी तालमेल, सूझबूझ, सहयोग, अनुशासन तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील और संघर्षरत रहना समय की मांग है। व्यक्तिगत स्वार्थो को कोसों दूर रख कर ही संस्था तथा देश की खुशहाली के बारे सोचा जा सकता है। दूसरी ओर अपने कर्मो से भय खाना भी तो स्वाभाविक है। संस्था के अधिकारी से भय खाना तो एक क्षणिक भय है और उसे हम अन्तर्मन से स्वीकार भी नहीं करते, जिसके कारण काम में लापरवाही आ जाती है, मन में अपने कर्त्तव्य के प्रति बेईमानी आ जाती है और एक समय ऐसा आता है कि मशीन निष्क्रिय बन जाती है। सबसे बड़ी बात स्वयं से भय खाना, यानि कि अपनी गलतियों का अहसास करके समयानुसार उनमें सम्भव सुधार लाने की आवश्यकता है, अन्यथा समाज, जो कि 21वीं शताब्दी में प्रवेश कर रहा है, एक मज़ाक बन जाएगा। यह समाज, जिसे हम सभ्य ओर शिक्षित लोगों का समाज कहते हैं, एक ढकोसला बन जाएगा। यह समाज एक मज़ाक और ढकोसला न बने इसलिए हम सभी को ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, सतत प्रयास, विवेक, सूझ-बूझ, गम्भीर चिन्तन, अनुशासन तथा अन्तत: आत्ममूल्यांकन को अपने जीवन का एक अभिन्न अंग बनाना चाहिए और इस धरा को स्वर्ग समान बनाना चाहिए।

कृषि - नीति निर्धारण की आवश्यकता

लाहौल-स्पीति सूखा, ठण्डा मरुस्थल होते हुए भी अपनी विशिष्ठ भौगोलिक स्थिति की वजह से बीमारी-रहित बीज उत्पादन के लिए अत्यन्त उत्तम है। पिछले चार दशकों में हमने कुठ, आलू, हॉप्स व मटर आदि नकदी फसलें देखीं और इनकी अच्छी पैदावार और गुणवत्ता के बावजूद आज भी लाहुली कृषक पेट पालने भर की खेती तक ही सीमित क्यों रह गया है? कहां पर हम गलत जा रहे हैं? इस स्थिति से निकलने के लिए आज हमें अपने ज़िले की कृषि नीति-निर्धारण की आवश्यकता आन पड़ी है। इसके लिए आवश्यक है कि कृषि से जुड़े शैक्षिक, सरकारी व गैरसरकारी संस्थाएं इस पर विचार करें।

यह सच है कि नकदी फसलों के आने से पहले यहां पर पेट पालने भर की खेती होती होती थी। जीवनयापन के अन्य क्षेत्र भी वस्तु के बदले वस्तु के आदान-प्रदान के आधार पर चलते थे। कुठ और आलू जैसे नकदी फसलों के आगमन से जैसे क्रान्ति आ गई। इसका लोगों को भरपूर लाभ मिला लेकिन कुछ दशकों के बाद इनकी खेती अलाभकारी सिद्ध होने लगी। तभी मटर और हॉप्स का अगमन हुआ। नई उम्मीदों की इस अफरातफरी में लोग एक दशक तक जूझते रहे और आज स्थिति यह है कि कृषक मायूस है। पूरा साल खेत पर खून-पसीना एक करके उसकी स्थिति फिर वहीं की वहीं रहती है। आज एक कृषक अपने आप को इस स्थिति में जैसे महाजन के चंगुल में फंसा हुआ सा पा रहा है। कहां पर हम पिछड़ गए? कहां पर हम गलत कर गए? इन सब का जवाब आसान नहीं है। वर्तमान राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों का इस पर जहां तक असर पड़ा, विपणन में हुई कमियों को ही हम दोष नहीं दे सकते क्योंकि आलू का विपणन हमने काफी हद तक सुलझाया है, फिर भी किसान के हाथ में कुछ नहीं पड़ता। इन सबका कारण ढूंढना पड़ेगा। जहां तक आलू व मटर का सम्बन्ध है, सारा लाभ दुलाई खा जाती है क्योंकि यह अधिक फैलाव वाली वस्तुएं हैं। हॉप्स अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा वाली फसल है। आज, जब तक यह पूरी या कुछ मात्रा में प्रतिबन्धित आयात वस्तु घोषित नहीं होती, हम इसे आमदनी वाली फसल नहीं कह सकते।

अब बात आती है कि हम कैसी नीति निर्धारित करें कि इसे अपना भी सकें व लाभ की भी स्थिति में हों? अब तक का अनुभव कहता है कि नकदी फसलें विभिन्न कारणों से लाभप्रद नहीं हो पा रही हैं। एक : अपनी भिन्न व दूरस्थ भौगोलिक परिस्थिति के कारण फसल के विपणन का आधा खर्चा दुलाई में ही लग जाता है। दो : संयुक्त परिवारों के विघटन के बाद खेती का सारा कार्य कामगारों पर निर्भर करता है और वह भी कृषक का एक दसवां लाभांश ले जाते हैं। तीन : कृषि योग्य भूमि के विस्तार की सम्भावना का न होना। इस सूरत में बड़े पैमाने की खेती करने की अक्षमता से कृषि अलाभकारी हो जाती है। चार : एक सशक्त कृषक *लॉबी* की कमी जो नीति निर्धारकों को प्रभावित कर सके। पांच : विपणन संभावनाओं को ढूंढने की अक्षमता। अगर हम अपने कृषि नीति निर्धारण में उपरोक्त अलाभकारी परिस्थितियों व अक्षमताओं को दूर करें तो कृषि को न सिर्फ लाभकारी बल्कि उद्योग की जगह पर ला सकते हैं। आवश्यकता है तो सिर्फ इस से जुड़े सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं व कृषकों को एक फोरम द्वारा विचारों का आदान-प्रदान कर नीति-निर्धारण करने की।

-बलदेव कृष्ण घरसंगी

आरक्षण - क्या अभी भी इसकी आवश्यकता है?

कई बार यह मुद्दा उठा कि लाहुल-स्पीति के छात्रों का किसी भी बड़ी नौकरियों में न आना आरक्षण की वजह से है। क्योंकि वह इसकी वजह से लापरवाह हो जाते हैं। वास्तव में आरक्षण हमारे लिए आज भी उतना ही ज़रूरी है जितना खेती करने के लिए सींचाई। फिर हम कहां पर पिछड़ रहे हैं? यह ज़रूर है कि आरक्षण को बहाना बना कर बहुत से विद्यार्थी ढीले पड़ जाते हैं। लेकिन हमारी वर्तमान स्थिति में पिछड़ने का असल कारण हमारे सामाजिक व आर्थिक बदलाव ही हैं। साठ व सत्तर के दशक में लाहुल गुरबत से जूझते हुए आगे बढ़ रहा था व इस लड़ाई में किसान, व्यापारी व छात्र, सभी उम्मीदें लेकर मेहनत में लगे थे क्योंकि उन्हें गरीबी का एहसास था। इस प्रकार एक तरह से क्रान्ति ही आ गई। लेकिन, अब हम क्या देखते है कि किसान असंतुष्ट रहता है। व्यापारी भी अपनी सीमा निर्धारित नहीं कर पा रहा है। व विद्यार्थी वर्ग दिशाहीन होकर रह गया है। अब नौकरीपेशावर्ग ही लाहुल-स्पीति का आधार बन गया है। लाहुली समाज का विघटन, अनिश्चतता व दिशाहीनता, उपरोक्त तीनों वर्गों की असफलता व चौथे वर्ग के उभरने से पैदा हो रहा है। इसका कारण यह है कि नौकरीपेशा व्यक्ति पूरे भारतवर्ष में फैला हुआ है तथा वह अपना कुनबा भी साथ रखता है जिससे संयुक्त परिवार एकाकी परिवार बन गया है। वह लाहुल व स्पीति के बारे में कम ही सोच पाता है क्योंकि उसका एक ही *ऐजेंडा* रहता है कि वह नई परिस्थिति में अपने आप को कैसे स्थित करे। उसके पास इस से आगे सोचने का समय ही नहीं होता है। इन परिस्थितियों में छात्रवर्ग दिशाहीन व लापरवाह हो रहा है। यह सोचने का विषय है। जब कि आज पारिवारिक मूल्य एकाकी परिवार तक सीमित होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार विघटन की ओर जा रहे हैं। गृह सदस्य रहते तो एक साथ हैं पर मनोस्थिति अलगाववादी विसंगतियों से ग्रस्त रहती है। आज का छात्रवर्ग इन विसंगतियों से उबर नहीं पा रहा है। वह एक अजीब मानसिक परिस्थिति में फंसा हुआ है जहां उसे हर चीज़ बेमानी लगने लगी है, तभी तो वह नशे की लत, शारीरिक पोषण से दूराव, पढ़ने व अपने कैरियर से परवाही की खाई में पड़ा सबसे अनभिज्ञ जी रहा है। इसके इलावा अरक्षण होते हुए भी उच्च नौकरियों में स्थान न पाने की वजह आज शहरीकरण के होते किसी की उत्कृष्ठ उपलब्धि को समाज की उपलब्धि न समझ कर व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में देखा जाना भी है। समाज के वर्षों से चले आ रहे उच्च मूल्यों के स्थान पर नवमूल्यों को अपनाने से भी लाहुल-स्पीति का छात्र वर्ग आज निरन्तर अवमूल्यन की तरफ जा रहा है। आरक्षण तो मात्र एक बहाना है। आरक्षण आज भी उतना ही ज़रूरी है जितना पहले था लेकिन इसका लाभ इस संक्रमण काल में हम ले नहीं पा रहे है।

-बलदेव कृष्ण घरसंगी

सखी

'दो'

बोल मैं तुझे क्या दूं
बदले में नहीं
बस यूं ही
'बोल क्या दूं'
तुम्हारे और खुद के सिवा
आखिर कुछ है भी तो नहीं
मेरे पास
और खुद को तो कब का
कर चुका हूं
'तुम्हें समर्पित'
बची तुम
तुम्हें शायद ही दे पाऊं
कभी किसी को
अपनी आखिरी सांस तक
और शयद इसी तरह
मेरी आत्मा को
शीतल करता रहेगा
हमेशा तुम्हारा
'निश्चल स्नेह'

'तीन'

सखी तुम बस याद
बहुत आती हो
और तुम्हारी वो मीठी यादें
गुदगुदा देती हैं
'मेरे मन को'
संभाल रखे है मैंने अब तक
तुम्हारी आंखों से टपके
वो तीन चार मोती
बिखरे रहते हैं
मेरी आस-पास की हवा में
हर दम
तुम्हारी 'खुशबू के कुछ टुकड़े'
डरता नहीं मैं
अपने आस-पास फैले
इन लम्बे चौड़े
अन्धेरों को देखकर
रास्ता दिखा दिया करता है
मेरे साथ-साथ चलता
हमेशा तुम्हारा
'उज्ज्वल साया'।

-शेखर

बचपन

पुचकारता था हर कोई
आंखों में मेरी देखकर
भोलापन बच्चों का
निर्मल कोमल कमल सा
लपक कर मै हाथ
बढ़ाता था उधर ही
समझ कर सभी को
ममतामयी माता सा
घुटनों के बल पर
टेकने के कुछ देर बाद
घर का बाहर का भेद
समझ पाया अपनों के बाद
झिझक मिटती थी
अभ्यास के बाद परायों से
फिर अपनापन था
अपनों के बाद परायों से
देहलीज़ से ज्यों ही
कदम अन्दर बाहर फिरा
त्यों ही अन्दर से भी
अच्छा साथी बाहर मिला
किलकारियों से आंगन
भर जाता था बेहतरतीब
कदमों में दौड़ते हुए
कभी गिरते कभी उठते
नन्द बाबा के आंगन में
यशोदा मां ने अनेकों बार
निरखी थी आनन्द-विभोर
हो, खेल यह बारम्बार
आज की मां भी नहीं
समझती है अपने को कम
आधुनिका बनने की अगर
दम भरती नही है हर दम
धीरे से कदमों ने नापा
आंगन से दूरी बागों तक
नज़रें दौड़ने लगी नीचे
से वृक्षों के फूल-पत्तों तक
चढ़ने की चाहत में कुछ
लटक जाते थे नीची डाली मे
लटके पैरों को उठाने हेतु
सहारा देते थे बालसखा अन्य
शक्ति, युक्ति बटोर कर भी
विफल रह जाते थे जब
आरोहण के अभियान में
खीज कर पत्थर फैंकते थे तब।

-आचार्य प्रेम सिंह शौण्डा

मेरे पहाड़

जन्म से ही देखा है,
उनकी ही छाया में पला हूं मैं,
कभी थका नहीं मैं,
उन्हें देखते-देखते,
हर पल सुन्दर - अति सुन्दर,
पाता हूं उन को मैं,
हर क्षण भिन्न ... और भिन्न,
पाता हूं उन को मैं,
आसमान को चूमती,
मेरा विश्वास - मेरी प्रेरणा,
हर समय वही - वैसे ही,
मेरे पहाड़ ... मेरा देश ...
मेरी जन्म भूमि!!

-प्रेम चन्द

उई आयों! अपेल तचे

योह थलज़ी याह बाह क्रपतिकू।
अफ मेमें ए गुर भट हतिकू ॥
अने कुई तीर्थ तीर्थ लेहईकू।
अचे ए न्वांशग खन्ड्रा केशिकू ॥
द्रुगो लङदिङ डरग योहज़ी।
शूलपंङ कोन्ज़रङ लटकोन्ज़ योहज़ी॥
अनेऊ चुमज़ङ गोज़ी नाज़ी।
बाह रङ हट्री कतरो थलज़ी ॥
काकातू थलज़ी मुदसरङ मचरतिरे।
मूंड: जेके महरतू टोटू लेहईरे ॥
इचा बोतलरङ फोन्जे चरतिरे।
झुट टुक रें जागा मेंह लेहईरे ॥
फ्या कुट्रा ज़ग्चा बङज़िन।
ग्वाशी गूडाङ नन्दे शुलिन ॥
दवाखी पुला रंङ नम चेलिन।
टलि रङ बङ ज़ा उमर रें केरिन ॥
गङ मी रङ दुरसा रीह दङ हतिना।
तिवारो थल ञरचा टोगतिना ॥
शूङ वलजे अड़ हुतिना ।
चुमज़ी पन्ज़ी आयों खांतिना ॥
घोप तचे चेलिना घुन्डू लालचे ।
स्वांग्लो मेचिमी! उई आयों ?
अपेल तचे ?

-सुरेश विद्यार्थी

मुकम्मल पहाड़ बनाने की ज़िद

(चित्रकार सुखदास के चित्रों के बीच एक शाम)

– अजय

जलसे के हो हल्ले ओर धूल से तंग आकर आप आराम के दो पल ढूंढ रहे है। लेकिन यह मेला है, लोग यहां बेचैन होने के लिए आते है। हर तरफ शोर और मस्ती का आलम है। यहां आराम कहां? आईए, मै आपको बताता हूं –

वैन्यू : डी०सी० ऑफिस मीटिंग हॉल, केलंग

इवेन्ट : कला प्रदर्शनी

कलाकार : श्री सुखदास

घंटों एकान्त है यहां। शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के आराम की व्यवस्था है। हर वर्ष जनजातीय मेले के अवसर पर ज़िला प्रशासन द्वारा इस प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता है। सरकारी ड्यूटी से एक आध घंटे का वक्त चुरा कर इन रंगों में डूबने का और फ्रेमों में कैद होने का लुत्फ़ ही कुछ और है। मेरे सामने एक रजिस्टर है जिस में बड़े-बड़े चित्रकारों, समीक्षकों तथा कला प्रेमियों की टिप्पणियां दर्ज है। बहुत कम शब्दों में काफी कुछ कह डालने की क्षमता होती है इन बड़े-बड़े लोगों में। मेरी भी इच्छा होती है कि इस कक्ष की चार-दीवारी पर सजे इन भव्य पहाड़ों पर कुछ लिखूं लेकिन मुझ जैसा लिक्खाड़ लिखने में कंजूसी नहीं कर सकता। इन पहाड़ों पर कई रजिस्टर खत्म कर सकता हूं। लेकिन क्योंकि मैं कोई कला मर्मज्ञ नहीं हूं, अपनी ऊल जलूल बातों से किसी कला घर के बहुमूल्य पन्नों को खराब कर देना मुझे अनुचित लगा।

गुरु जी को रोरिख के साथ जोड़कर देखना या 'रोरिख घराने की नई पीढ़ी' के रूप में आंकना सही नहीं प्रतीत होता। बेशक उन पर रोरिख का प्रभाव बहुत गहरा है। लेकिन इन की तुलना करना दोनों ही चित्रकारों के साथ अन्याय करना है। दोनों में एक बुनियादी फर्क है। मै नहीं जानता हिमालय की श्रेणियों के साथ रोरिख परिवार के जो संबन्ध थे उन में अंतरंगता और आत्मीयता कितनी थी। लेकिन उन की तसवीरें देख कर समझ में आता है कि उन्होंने हिमालय को केवल भोगा है – ठीक एक *कंज़्यूमर* की तरह। रोरिख ने पहाड़ को एक अजूबे की तरह देखा और उस कौतुक को पूरा का पूरा कैनवस पर उतारा – गम्भीर तटस्थता के साथ।

जबकि गुरु जी ने पहाड़ को न केवल भोगा आपितु यथार्थ जीवन में उसे जीया है। उस का निर्माण किया, अपने कर्मों से उसे संवारा। अपनी चेतना, अपने अस्तित्व से उसे समृद्ध किया है। दरअसल इन पहाड़ों ने उन्हें पाला है और वे पहाड़ों को कोसते हैं। अपने पहाड़ से तटस्थ नहीं रह सके है वह। उनका पूरा व्यक्तित्व उसमें घुल-मिल गया है। रोरिख ने पहाड़ के रंगों को पकड़ उन्हें स्वयं में आत्मसात् करने का प्रयास किया है। जब कि गुरु जी पहाड़ की मिट्टी का स्पर्श कर उस की खुशबू को अपने चित्र फलकों पर अंकित करते है। यही वह बिन्दु है जहां से दोंनो कलाकारों की कृतियों में एक विस्तृत अन्तराल नज़र आता है जिसे पाटना हर हाल में नामुमकिन है।

अगर आप गुरु जी की कृतियों में 'घुस कर देख सकने' का साहस करें तो आप पहाड़ की मिट्टी की उस उदात्त सुरभि को निस्सृत होते हुए साक्षात् देख सकते है। यह अकारण नहीं है कि गुरु जी के चित्रों में उसी सुगन्ध को छू लेने का उतावलापन दिखाई दिया है। इसके इलावा कुछ धुंधले रूपाकार और प्रतीक इन पहाड़ों में उभरते हुए देखे जा सकते हैं, जो आज के भीषण आधुनिकतावादी दौर में अपनी पहचान बनाने और उसे अक्षुण्ण रखने के लिए संघर्षरत् लाहुल की धरती से उठाए गए है। यद्यपि ये प्रतीक यहां सायास उकेर गए लगते है, फिर भी अतिप्रिय लगते है। इन्हें मै वस्तुत: 'शुभ चिन्ह' कहना चाहूंगा और आगामी कृतियों में इन के और भी स्पष्ट रूप से उभर आने की आशा करता हूं। पिछले चंद वर्षों में गुरुजी ने पहाड़, और केवल पहाड़ ही चित्रित किए हैं। जब *पोर्ट्रेट* छोड़ कर *लैंडस्केप* की ओर मुड़े है, यह सिलसिला टूट नहीं पा रहा। यह शायद इसलिए कि वे अपने पहाड़ों में इस कदर घुल-मिल गए है कि हर कृति में कुछ न कुछ छूटा रह गया है, जिसे पूरा करने के लिए वे तुरन्त एक और पहाड़ बना डालते है। और यह क्रम चलता रहता है –

चित्रकार कवि स्वर्गीय जगदीश स्वामीनाथन ने कहीं लिखा है :

'यह जो सामने पहाड़ है
इस के पीछे एक पहाड़ और है
जो दिखाई नहीं देता।'

गुरु जी का व्यक्तित्व भी एक तरह से उन के इन पहाड़ों जैसा है। कई जटिल परतों में बंद। मानो कोई मध्यकालीन दुर्ग हो – एकदम अज्ञेय एवं अभेद्य। परत के बाद परत नज़र आता है, द्वार के बाद द्वार...

स्वभाव से अन्तर्मुखी एवं आनंद के अभिलाषी। इस वर्ष उन से अनेक मुलाकातें हुईं। हर बार इच्छा हुई कि उन के भीतर तक झांककर इस जटिल व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करूं, लेकिन प्रत्येक बार मुझे बीच रास्ते से लौटना पड़ा। उनकी अत्यधिक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण या पता नहीं अपनी ही अन्दरूनी कमज़ोरी के कारण मुझे

शेष पृष्ठ 23 पर।

मेहंदी से ढके हाथ

-सरला

फागुन मास का अन्तिम सप्ताह है शायद। बर्फ की सफेद चादर में लिपटा घाटी का सौन्दर्य उस देवतरु के इर्द-गिर्द सिमट सा आया जैसे। पारम्परिक वेश-भूषा में सजे ढोल और नगाड़ों की ताल पर नृत्य करते मस्ती में झूमते देवपुत्र व देवताओं का यह सरल और पाक हृदय आज भाव विभोर हो आनन्दमय हो रहा है।

हां, आज गोची का दिन है। मां अपने नवजात शिशु को पीठ में उठा पारम्परिक आभूषणों से लदी फूली न समा रही है। ममता की मूर्ति, श्रम की पुजारिन, इस जननी का मुख कैसे दैवीय आभा से दमक रहा है - परियों सा नैसर्गिक! हाथों में मेंहदी दमक रही है, भाल पर कपूर, सिर पर फिरोज़े की लड़ियों से पिरोई गई टोपी और नथ, बड़ी-बड़ी सोने की बालियों और मूंगों के हार के तो कहने ही क्या! यह लाहुल की नारी है-- लाहुल की कर्णधार और प्रगति की अग्रदूत।

नारी एक जननी सृष्टि रचयिता और जीवनदायिनी। त्याग और सहनशीलता की मूर्ति तथा थोड़े से सन्तुष्ट हो जाने वाली नारी ज्ञानदायिनी तो है ही, शक्तिदायिनी भी है। पर कभी-कभी उसकी बेबसी पर रोना भी आता है। तभी तो मैथिलीशरण गुप्त ने भी उसे "आंचल में है दूध और आंखों में है पानी" से परिभाषित किया है। इस के विपरीत लाहुल की नारी आज तक कभी आंखों में पानी वाली नारी नहीं बनी वरन् हर कदम पर पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर उस के सुख और दु:ख में इस कदर सहभागिनी बनी कि आज मैं अगर उस की तुलना मेवाड़ की वीरांगनाओं से करूं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पुरुष को ईश्वर ने शारीरिक गठन में अधिक बलवान बनाया है पर जब खेतों में - धूप में, बारिश में और सर्दी में हाथ पैर तोड़ती लाहुल की नारी को देखें तो यह सत्य नकारने को मन करता है कि पुरुष नारी से बलवान होता है। अरे आप पानी की बाल्टी उठाने की बात करते हैं, हमारी बहनों ने तो हल उठाए हैं। हाथ फट गए तो क्या हुआ! सर्दियां आएंगी, ऊन कातेंगे, हाथ ठीक हो जाएंगे। वाह री कर्मयोगिनी, कटे का इलाज भी ऐसे कि उस से भी कुछ बन जाए, कुछ निर्माण हो जाए।

ऐसी किम्बदन्ती है कि किसी सास ने बहु को कोई सख्त किस्म का घास हाथ से काट कर लाने को कहा और आज्ञाकारी बहु के घास से ही हाथ छलनी हो गए, लहु की धारा बह चली। अपनी मां को सन्देशा भेजा कि कोई मल्हम भेज दें जिससे उस के ज़ख्म भर जाएं। मां ने ऊन भेज दी, कहा कि इसे कात कर भेज दो। बेटी खूब रोई, अपने भाग्य को कोसा। सास तो ज़ालिम, मां भी ऐसी कि बेटी का दर्द न जाना। पर क्या करती, बड़ों की अवज्ञा कैसे करती! जैसे-तैसे सारी ऊन कात कर भेज दी। एक चमत्कार हुआ जैसे, हाथ के ज़ख्म भर गए। ऐसी शिक्षा हमारी माएं देती हैं लाहुल की बेटियों को। परिवार के लिए कुर्बानी - एक पत्नी अपने पति के लिए, एक मां अपने बच्चों के लिए और एक बहन अपने भाई के लिए और सब से अधिक घर की एक गृहणी अपने परिवारजनों के लिए देती है, ऐसी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। बहुत सारे घर का तो बहनों और बुआओं की वजह से ही सुचारू रूप से चलते आ रहे हैं। वे अपने लिए नहीं जीतीं, वरन् अपने मां बाप, भाई और भतीजों के लिए अपना सारा यौवन और अन्ततः जीवन ही कुर्बान कर देती हैं। क्या उनकी इच्छाएं और आकांक्षाएं नहीं होंगी? क्या उनका मन भी कभी कल्पना की उड़ान नहीं भरता होगा? पर नहीं, उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। लाहुल की नारी ने सिर्फ देना सीखा है, अपने लिए मांगना तो जैसे कभी सीखा ही नहीं।

कर्म को क्रीड़ा मानकर जुट जाने वाली इन मां-बहनों के माथे पर शिकन की लकीर तक नहीं आती। क्या ऐसा सहयोग पुरुषों को किसी और समाज में मिला होगा। प्रायः सुनने में आता है कि लाहुल ने बहुत उन्नति की। पर आज तक कभी यह सुनने में नहीं आया कि लाहुल की नारी का इस प्रगति मे कितना योगदान है। अगर पुरुषों को नारी का सहयोग न मिला होता, अगर नारी आंखों में पानी लिए छुई-मुई बनकर घर की चार-दीवारी में दो जून की रोटी पकाती रहती और गुप्त जी की अबला बनी रहती, तो क्या आज लाहुल इस रफ़्तार से उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता और आज क्या हम समाज में गर्व से सिर ऊंचा करके चल पाते? अगर उस ने अपने अस्तित्व का इस तरह से नाश न किया होता और कर्म के बावजूद पुरुष को सिर-माथे उठा न रखती तो---? ये कुछ प्रश्न है जिन का उत्तर पुरुषों को देना है।

और आज इस देवतरू के इर्द-गिर्द यह यौवन जो संगीत के लय में थिरक रहा है, फ़ीकापन लिए नहीं

शेष पृष्ठ 20 पर.....

वरदान का गीत

इस अनित्य संसार में मानव आशा और आकांक्षाओं के बलबूते पर ही जीवन जीता है। इस प्रकार वह नित्यप्रति परिश्रम कर एक समृद्ध जीवन यापन करने की भी चाह रखता है। इतना ही नहीं, वह अपनी इस समृद्धि में असुरों से भी सहयोग मांगता है, तथा नाना वरदान की कामना करता है। ऐसी ही एक प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा लाहुल की पट्टन वादी में प्रचलित थी। इस समय वह प्रथा वादी से प्राय: लुप्त हो चुकी है। वरदान मांगने की पद्धति एवं गीत निम्न प्रकार से है :

1. बड़ी दानु तीयारा,
   चौंवे मुखे चोका जे ॥
2. बड़ी दानु तीयारा,
   ऊंठा-हाथी वार देओ ॥
3. बड़ी दानु तीयारा,
   सोना-चांदी वार देओ ॥
4. बड़ी दानु तीयारा,
   ताम्बा-कांसा वार देओ ॥
5. बड़ी दानु तीयारा,
   मूंगा-मोती वार देओ ॥
6. बड़ी दानु तीयारा,
   आना-दाना वार देओ ॥
7. बड़ी दानु तीयारा,
   सारा-सुरे वार देओ ॥
8. बड़ी दानु तीयारा,
   भेड़ा-बकुड़ी वार देआ ॥

इत्यादि

अनुवाद :-

1. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) चारों ओर से चोखा (वरदान) दें।
2. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) ऊंट और हाथियों का वरदान दें।
3. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) सोना और चांदी का वरदान दें।
4. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) तांबा और कांसे का वरदान दें।
5. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) मूंगा और मोतियों का वरदान दें।
6. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) अन्न और दाने का वरदान दें।
7. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) शराब और मदिरा का वरदान दें।
8. हे! बड़े दानप्रिय (आप हमें) भेड़ और बकरियों का वरदान दें।

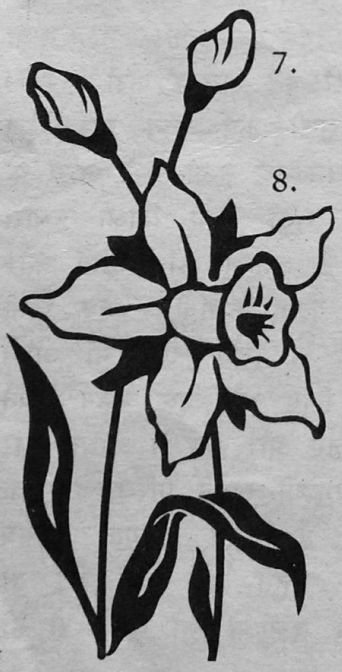

गवैया - *मास्टर लाल चन्द शाशनी*
गांव-तन्दी, जून 1974 (रिकॉर्डिंग)

संकलनकर्त्ता एवं अनुवादक -
के० अंगरूप लाहुली

लाहुल में स्कीइंग की सम्भावनाएं

-ज्ञालछ़न ठाकुर

लाहुल में आने वाले समय में स्कीइंग खेल का भविष्य काफी अच्छा है जिस से हमारे बच्चों का भविष्य संवारने व अपने लाहुल और प्रदेश का नाम रोशन कर सकने की पूरी सम्भवनाएं है।

हम सभी को मालूम ही है कि कई लाहुलियों ने दुनिया व एशिया की कई ऊंची-ऊंची चोटियों पर चढ़ने में तथा स्कीइंग में भारत का प्रतिनिधित्व कर इसमें विजय पाई है और एशिया में स्कीइंग में आठवां स्थान प्राप्त कर लाहुल और प्रदेश का नाम ऊंचा किया है। इन्होंने विभिन्न विभागों में नौकरी पाने के पश्चात तीस-पैंतीस की आयु के बाद इन चीज़ों में प्रशिक्षण पा कर सफलता पाई है, जब कि दूसरे खेलों में खिलाड़ी इस आयु में सन्यास लेने की अवस्था में होते हैं।

लाहुल में दुनिया के अच्छी से अच्छी स्कीइंग ढलानों के मुकाबले के ढलान आंगन में ही सुलभ है जिन का हम उपयोग नहीं कर पा रहे है। 'लायुल माउंटेनीयरिंग व स्कीइंग क्लब' जो एक पंजीकृत क्लब है, ऐसे ही उद्देश्यों को लेकर लाहुल के छोटे-छोटे बच्चों को स्कीइंग तथा रॉक क्लाइंबिंग का एलिमेंटरी कोर्स मुफ़्त कराती है। इसके अलावा यह क्लब चार साल से *यति-उत्सव* का आयोजन भी कर रही है जिसमें स्कीइंग के मुकाबले कराए जाते हैं।

'लायुल माउंटेनीयरिंग व स्कीइंग क्लब', केलंग की हार्दिक इच्छा है कि ज़िला प्रशासन अगले वर्ष से इस प्रतियोगिता को ज़िला-स्तर की प्रतियोगिता घोषित करे। लाहुल के उन लोगों से अनुरोध है, जो इन खेलों के माहिर है तथा लाहुल के उन लोगों से भी जो मनाली में अपने प्राइवेट कोर्स चला कर लोगों को प्रशिक्षित कर रहे है, वे लाहुल में भी छोटे-छोटे बच्चों को अपने तजुर्बे से लाभान्वित करें एवं प्रशिक्षण कोर्स चलाएं। अन्य सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं से भी अनुरोध है कि वे धन व किसी भी तरह से अपना योगदान दें ताकि शीतकालीन खेलों के क्षेत्र में लाहुल-स्पीति ज़िला राष्ट्रीय स्तर पर आगे आ सके।

चौथा यति उत्सव

(बारबोग - 26-29 मार्च 1998)

चौथे यति-उत्सव में लाहुल के प्रत्येक वैली से 70 प्रतियोगियों ने पूरे उत्साह से विभिन्न शीत खेल स्पर्धाओं में भाग लिया।

शीत खेल प्रतियोगिता परिणाम इस प्रकार रहे :

1. स्लालोम सीनियर्ज़ : अमरजीत (सुमनम) प्रथम, संजय (ग्वाज़ंग) द्वितीय, सुरेंद्र (लोट) तृतीय।
2. जायंट स्लालोम सीनियर्ज़ : अमरजीत (सुमनम) प्रथम, संजय (ग्वाज़ंग) द्वितीय, सुरेंद्र (लोट) तृतीय।
3. सुपर जायंट स्लालोम सीनि. सोनम बोध (केलंग) प्रथम, सुरेंद्र (लोट) द्वितीय, अमरजीत (सुमनम) तृतीय।
4. क्रॉस-कन्ट्री रेस सीनि. चरनजीत (सुमनम) प्रथम, बीर सिंह (कारदंग) द्वितीय, संजय (ग्वाज़ंग) तृतीय।

1. स्लालोम जूनियर्ज़ : ज़ंगपो (ग्वाज़ंग) प्रथम, रंजीत (केलंग) द्वितीय, तन्ज़िन कारपा (केलंग) तृतीय।
2. जायंट स्लालोम जूनियर्ज़ : ज़ंगपो (ग्वाज़ंग) प्रथम, रंजीत (केलंग) द्वितीय, अनिल (ग्वाज़ंग) तृतीय।
3. सुपर जायंट स्लालोम जूनि. वांग्याल (नमचि़) प्रथम, ज़ंगपो (ग्वाज़ंग) द्वितीय, रंजीत (केलंग) तृतीय।
4. क्रॉस-कन्ट्री रेस जूनि. ज़ंगपो (ग्वाज़ंग) प्रथम, वांग्याल (नमचि़) द्वितीय, अनिल (ग्वाज़ंग) तृतीय।।

इस प्रकार सीनियर वर्ग में अमर जीत (सुमनम) और जूनियर वर्ग में ज़ंग्पो (ग्वाज़ंग) को इस वर्ष के यति उत्सव खेलों में सर्वश्रेष्ठ स्कीयर घोषित किया गया।

धर्मचक्र विहार ताबो स्पीति

-छेरिङ दोर्जे

(नोट :- इस लेख में "ऽो" कई बार आया है, इस का उच्चारण देवनागरी "ओ" की आधी ध्वनि के लगभग करें।)

वर्ष 1996 ई० को धर्मचक्र विहार ताबो *(ति० - ल्ता-बो छोस-ऽखोर)* के निर्माण को हज़ार वर्ष पूरा हो गया था। इस उपलक्ष्य में हिमाचल प्रदेश सरकार की ओर से एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का समारोह किया गया, जो पूरे दो सप्ताह चलता रहा। समारोह का मुख्य आकर्षण महामहिम दलाई लामा जी का श्रीतन्त्रराज कालचक्र का अभिषेक प्रदान करना था। एक अन्य आयोजन महान् द्विभाषी तथा अनुवादक *(ति०- लोच्-व्)*, (*संस्कृत* - लोक चक्षु) रिन-छेन-व्ज़ङ-पो पर गोष्ठी का अयोजन भी था। इसके अतिरिक्त अन्य सांस्कृतिक आयोजन भी थे, जो अधिकतर पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए आयोजित किए गए थे।

प्राय: समस्त सरकारी आयोजनों के पश्चात् समाचार पत्रों में कुछ न कुछ टिप्पणियां छपती रहती हैं, इस बार भी वही हुआ और इसे एक असफलता की संज्ञा दी गई। हिमाचल सरकार ने इस अपूर्व बौद्ध मन्दिर के एक हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर एक अविस्मरणीय समारोह आयोजित करने में काफी धन खर्च किया। जिसका उद्देश्य किन्नौर और स्पीति के अंचलों में पर्यटन को बढ़ावा देना ही था।

पिछले कुछ वर्षों में तिब्बती बौद्ध धर्म और संस्कृति को विषय बना कर लेखों की बाढ़ सी आ गई है। विशेष कर आंगल भाषा में। भला ताबो विहार इस से कैसे छूट जाता। सर्वप्रथम प्रयास जर्मन पुरातत्ववेत्ता तथा मसीही धर्म प्रचारक रे० फ्रैंके (Rev. Franke) ने अपनी दो जिल्द की पुस्तक *'एन्टीक्विटीज़ ऑफ इण्डियन तिब्बत'* में ताबो का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् इटली के विख्यात भोट-वेत्ता ज्योसिपे टुची ने *'इण्डो-तिब्बेतिका -III-I'* में विस्तार से किया है। फिर प्रोफ़ेसर सनेलग्रोव लंदन ने भी इस विहार का ज़िक्र *'हिमालयन पिलग्रिमेज'* में किया है। हिन्दी में महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने इसका ज़िक्र ल्ह-लुङ के संदर्भ में *'मेरी जीवन यात्रा'* में किया है और लिखा है कि इसकी ख्याति अजन्ता जैसी हो सकती है। न कि उन्होंने इसे हिमालय का अजन्ता कहा है। अब तो दर्जनों पुस्तकें और लेख ताबो गोम्पा को लेकर प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रचलित जनश्रुतियों ा उत्तर-चोङ-ख्-प् कालीन तिब्बती साहित्यों में इस विहार का निर्माणकर्त्ता प्रसिद्ध द्वि-भाषी रिन-छेन-व्ज़ङ-पो को कहा गया है। विशेष रूप से यहां पर मै सुम-प्-छोस्-व्युङ का ज़िक्र करना चाहता हूं। इसके अतिरिक्त द्विभाषी जी की जीवनी में भी ऐसा ही लिखा है। परन्तु यह जीवनी काफी पीछे लिखी गई है। चैत्य-गृह के भित्ति लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महान् बौद्ध विहार का निर्माण गुगे जङ-जुङ के राजा ल्हेङ-ङे (पश्चात् बौद्ध भिक्षु बनने पर ये-शेस-ऽोद् नाम रखा गया) ने 996 ई० में निर्माण किया था और फिर उनके पौत्र व्यङ-छुब-ऽोद ने 1042 ई० में दोबारा मुरम्मत की थी। यह वही वर्ष है ज़ब विक्रमशिला बौद्ध विहार से महान् भारतीय बौद्ध आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान आतिश गुगे जङ-जुङ की राजधानी थोलिंग में परमभट्टारक ये-शेस-ऽोद के बुलावे पर पहुंचे थे और समस्त तिब्बत में बौद्ध धर्म को एक नया रूप देकर फैलाया था, जो राजा ग्लङ-दर-म् के काल में प्राय: लुप्त हो चुका था।

ताबो विहार का संक्षिप्त वर्णन

यहां पर मै विहार की स्थिति और निर्माण के बारे पाठकों को सूचित करना चाहता हूं कि यह विहार तत्कालीन गुगे जङ-जुङ राज्य के स्पि्य-स्दे और वर्तमान स्पीति उपत्यका के निचले भाग में स्पीति नदी के दाएं किनारे पर समतल भूमि में स्थित है। विहार के अहाते को चारों ओर से ऊंची मिट्टी की दीवारों से घेर कर अलग ही अपना अहाता बनाया गया है। जहां पर आठ मन्दिर और कुछ स्तूप *(ति० - म्छोद-र्तेन)* बने हैं, जो विभिन्न कालों में निर्मित हुए हैं। इस अहाते को *छोस-ऽखोर-ग्लिङ* अथवा धर्मचक्र स्थान कहा जाता है। इन आठ मन्दिरों के नाम इस प्रकार है :- ग्चुग-लग-खङ, द्किल-खङ, ग्सेर-खङ, ऽब्रोम-स्तोन ल्ह-खङ, स्गो-खङ, द्कर-ऽव्युङ, व्यम्स-पइ-ल्ह-खङ और ऽब्रोम-स्तोन ल्ह-खङ-छुङ। इनमें सब से पुराना और भव्य भवन ग्चुग-लग-खङ अथवा चैत्य-गृह का है। यह भवन 14 स्तम्भों पर खड़ा है और दीवारें सुन्दर भित्ति चित्रों और जड़े हुए मानवाकार देवी देवताओं और बोधिसत्त्वों की मूर्तियों से सुसज्जित है। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर खुलता है। मुख्य मन्दिर को प्रवेश करने से पहले एक अन्य मन्दिर स्गो-खङ, जो पीछे बना है, से गुज़रना पड़ता है। इस से लगा एक अन्य कमरा भी है जिसे स्गोन्-खङ अर्थात् धर्मपाल का कक्ष कहते हैं। इन दोनों कमरों का मुख्य भवन से काफी पीछे निर्माण हुआ है। ऐसा पीला टोपधारी द्गे-लुग्स्-प् सम्प्रदाय के लामाओं के चित्र प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यहां पर भी स्गो-खङ और मुख्य मन्दिर के बीच एक अन्य कमरा है जो कि द्वार कक्ष का हिस्सा है। उसको पार करते ही हम मुख्य

चैत्य-भवन में प्रवेश करते है। इस भवन का निर्माण, जैसा ऊपर लिख चुका हूं, 996 ई० में गुगे जङ-जुङ के राजा ये-शेस्-ओद ने किया था। यह भवन आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। भवन की सुन्दरता, विशालता और दीवारों पर चित्रित भित्तिचित्र तथा बोधिसत्वों की मूर्तियां जो दीवारों पर जड़ी हुई है, हज़ार वर्ष पूर्व की कलाकृतियों और निर्माण शैली की मुंहबोलती तस्वीर है। छतों में भी देवी देवताओं की तस्वीरें तथा अन्य सज्जा चित्र बने है। जिन में मेघ-गमन, मयूर, पुष्प, मीन आदि के सुन्दर चित्र मन को मोह लेते है। चैत्य-भवन के पश्चिमी छोर के मध्य मुख्य नेतृत्वकर्त्ता बोधिसत्त्व वैरोचन की मूर्ति स्थापित है। वास्तव में चैत्य-भवन वैरोचन बुद्ध के अनुष्ठान द्वारा बुद्धत्व प्राप्ति के लिए मण्डल क्रम अनुसार ज्ञान की प्राप्ति और समस्त जीवों को सांसारिक दु:खों से छुटकारा दिलाकर अमरत्व लाभ भोगना है, को समर्पित है।

यहां मै वैरोचन बुद्ध मण्डल क्रम का संक्षिप्त वर्णन करने जा रहा हूं। ताकि पाठकगण यहां की मूर्तियों और चित्रों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। महायान में निर्वाण प्राप्ति हेतु तन्त्रज्ञान द्वारा मण्डलक्रम पर ध्यान केन्द्रित कर के फल भोगा जा सकता है। इस मण्डलीय क्रम का ध्यान, धारणा तथा समझना ज़रा जटिल अवश्य है। फिर भी साधकों के लिए इस पर अमल करना अत्यावश्यक है। वैरोचनाभिसम्बोधि विकुरविताधिष्ठान तन्त्र के अनुसार मुख्यत: तीन प्रकार के मण्डलों का ज़िक्र किया गया है। जो ये है, वज्र धातु मण्डल, धर्म धातु मण्डल और धर्म धातु वागीश्वर मण्डल। ताबो चैत्य-भवन के धातु मण्डल को मूर्त रूप और चित्र रूप दोनों प्रकार के कला कौशल द्वारा दर्शाया गया है। जो भगवत् वैरोचन धर्म धातु वैपुल्यसूत्र में इस प्रकार है और इस भवन में भी इसी क्रम से प्रतिष्ठित किया गया है।

इस कक्ष को अब मै वैरोचन कक्ष कहूंगा। वैरोचन कक्ष के पश्चिमी छोर के मध्य में भगवत् वैरोचन चतुर्मुखी, श्वेत वर्ण, धर्मचक्र मुद्रा में सुमेरु पर्वत पर सहस्रदल कमल तथा चन्द्रमा के आसन पर आदि बुद्ध के रूप में स्थापित किया गया है। ऊपर की ओर के छत्र को कीर्तिमुखों द्वारा सजाया गया है। और चारों तरफ दीवारों पर 33 मूर्तियां जड़कर सजाया गया है, जो कि वज्र धातु मण्डल के पारिवारिक देवी-देवता और बोधिसत्त्वों की मूर्तियां है। बुद्ध वैरोचन की मूर्ति के ठीक पीछे गर्भगृह बना है, जिस के चारों तरफ प्रदक्षिणा पथ है। गर्भगृह में अमिताभ बुद्ध की मूर्ति स्थापित है जो कि वैरोचन के चार निर्माण कायों में से एक है। अमिताभ बुद्ध के पीछे दीवार पर दो स्वर्गीय देवियां फूल बरसाती हुई है और दो क्षीतिगर्भ की मूर्तियां पूजती हुई बनाई गई है। जिसका अर्थ है कि ताबो में कुछ कलाकार मध्य एशिया से भी आए थे। अमिताभ बुद्ध के दाईं और बाईं दीवारों पर अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि की मूर्तियां खड़ी है, और प्रदक्षिणापथ के दोनों सिरों पर बोधिसत्त्व पद्मपाणि और महास्थाम प्राप्त की मूर्तियां खड़ी है। परिक्रमा-पथ की दीवारों पर भद्रकाल के सहस्रबुद्ध का सुन्दर चित्र बना है। और इसके इलावा इन दीवारों पर 16 बोधिसत्त्वों और 4 पारमिताओं का भी चित्र चित्रित है।

अब वैरोचन बुद्ध के मण्डल परिवार की 33 मूर्तियों का वर्णन और इन मूर्तियों का क्रम वज्र धातु मण्डल के अनुसार इस प्रकार है। सर्वप्रथम भगवत् वज्र धातु के ज्ञान तेज द्वारा पंचकुल भगवत् का निर्माण पंच कायाओं में इस प्रकार है : भगवत् वैरोचन आदि बुद्ध के रूप में, भगवत् अक्षोभ्य, भगवत् रत्नसम्भव, भगवत् अमिताभ और भगवत् अमोघसिद्धि। प्रत्येक पचंकुल तथागत के साथ चार-चार देवी और देवता का अलग लघु कुल है।

(1) भगवत् वैरोचन के लघु-कुल में चार देवियां है, सत्तवज्री, रत्नवज्री, धर्मवज्री और कर्मवज्री।

(2) भगवत् अक्षोभ्य के सब चार देवतागण है, वज्रसत्त्व, वज्रराज, वज्रराग और वज्रसाधु।

(3) भगवत् रत्नसंभव के साथ है चार देवगण - वज्ररत्न, वज्रतेज, वज्रकेतु और वज्रहास।

(4) भगवत् अमिताभ के साथ भी चार देवगण है - वज्रधर्म, वज्रतीक्ष्ण और वज्रहतु और वज्रभाष।

(5) भगवत् अमोघसिद्धि के साथ भी चार देवगण है - वज्रकर्म, वज्ररक्षा, वज्रयक्ष और वज्रसन्धि।

अब आती है आठ देवियां, पूजा सामग्री अर्पण हेतु, जो इस प्रकार है :-

1. वज्रलास्या 2. वज्रमाला 3. वज्रगीता 4. वज्रनृत्या
5. वज्रधूपा 6. वज्रपुष्पा 7. वज्रालोका 8. वज्रगन्धा।

इसके अतिरिक्त चार दिशाओं में चार द्वारपाल इस प्रकार है :-

1. वज्रअंकुश 2. वज्रपाश 3. वज्रस्फोट 4. वज्रवेश।

इस प्रकार 33 देवी-देवताओं और तथागतों का यह मण्डल पूर्ण हो जाता है, जो कि ताबो के वैरोचन-भवन में मूर्तियों के रूप में दीवारों पर जड़ा हुआ है। इस विशेष मण्डल का नाम 'श्री भगवत् वैरोचन महावज्रधातु मण्डल' है।

इस भवन में इन मूर्तियों के अतिरिक्त बहुत से सुन्दर चित्र भी चित्रित किए गए है। दीवारों पर जहां मूर्तियां जड़ी हुई है, जो कि फर्श से करीबन 4½ फुट की ऊंचाई पर जड़ी है, के ऊपरले हिस्सों में भद्रकल्प के 16 बोधिसत्त्वों का सजीव चित्रण किया गया है और इनके साथ चार पारमिताओं के भी सुन्दर चित्र है, और निचले हिस्सों में बाईं दीवार पर भगवान बुद्ध की जीवनी का चित्रण ललितविस्तर सूत्र के अनुसार बारह खण्डों में किया गया है। और दाईं दीवार पर 'श्रेष्टीपुत्रः सुधन' की जीवनी का चित्रण गण्डव्यूहसूत्र के आधार पर किया गया है। मुख्य द्वार वाली दीवार के निचले हिस्सों में ताबो के विहार में उपस्थित आचार्यों और राजवंशों और मुख्य लोगों का चित्र भी बना है। इन में अधिकतर राजपुरोहितों तथा कर्मचारियों के चित्र है। उनके पहनावे से यह प्रतीत होता है कि कुछ पहनावा आज भी स्पीति और उसके इर्द-गिर्द के इलाकों, लाहुल, ज़न्स्कर और किन्नौर में प्रचलित है। इस पर यदि विद्वान छान-बीन करें तो उन्हें बहुत से लाभप्रद ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हो सकते है। मुझे इन तमाम चित्रों में कहीं भी महान द्विभाषी रिन-छेन-ज़ङ्-पो का चित्र नज़र नहीं आया। विशेष ध्यान देने योग्य ग्चुग-लग-खङ-गि-सुङ-म *विभूमिन* का चित्र अपने बारह परिवार के साथ प्रवेश द्वार के भीतर और बाहर ठीक द्वार के ऊपर चित्रित किया है। तिब्बती भाषा में लिखी पंक्ति का हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार है - 'मुख्य मन्दिर रक्षिका विभूमिन'। इस चित्र का संम्बध किसी महायानी धर्मपाल अथवा रक्षकगण के साथ बिल्कुल नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि यह एक स्थानीय देवी थी, जिस को बाद में गुगे-जङ-जुङ के राजवंश ने अपनी रक्षक देवी के रूप में मान्यता दी थी, प्रारम्भ में यह देवी बोन धर्म के मानने वालों की स्थानीय रक्षक देवी थी।

इस देवी के कपड़ों और ज़ेवरों से ऐसा प्रतीत होता है कि जो कपड़े उन्होंने धारण किए है वे आज भी लद्दाख, ज़न्स्कर और स्पीति तथा गाहर (लाहुल) में प्रमुख औरतें पहनती है जो विशेष रूप से थिगमा पट्टू से तैयार किया जाता है। थिगमा रंगाई को अग्रेंज़ी में *टाई-डाई* कहते है। जिन मणियों (अर्थात् सोलमणि) का हार वह पहने हुई है उसका प्रचलन आज भी पूरे तिब्बत और तिब्बती सभ्यताओं से प्रभावित स्थानों में है। इस बारे में विस्तार से दूसरे लेख में *'ताबो के भीतरी चित्र और मूर्ति कला'* में लिखूंगा।

पश्चिमी दीवारों पर अधिकतर लेख है। प्रदक्षिणा पथ के लेख में इस विहार निर्माण सम्बन्धी लेख इस प्रकार है:-

स्प्रेङु-इ लो-ल्-स्ङोन-मेस व्यङ-छुब सेम्स-दपस।
वानर वर्ष में (मेरे) पूर्वज दादा बोधिसत्त्व (व्यङ-छुब ङोद) ने।

ग्चुग-लग-खङ-ङिद-व्जेङ्स-नस्।
इस विहार का निर्माण किया।

लो-व्जि-व्चु-र्च-द्रुग-गि-ङोग-तु-द्वोन्-ल्ह-ब्चुन-प्-व्यङ-छुव-ङोद-क्यिस-ब्यङ-छुब-क्यि-धुग्स-स्ङोन-तु-ङग्रो-वस।

(उसके) 46 वर्ष के पश्चात् (उनके) पौत्र देवप्रिय व्यङ-छुब-ङोद के बोधिचित्त के जागृत होने पर।

ग्चुग-लग-खङ-ङदि-ग्सोङ-व्-म्ज़द-दे।
इस विहार का पुनर्निर्माण करके।

देङी-व्कङ-रिन-पो-छेस्-ब्स्कुल-व्-स्ङोन-तु-ङग्री-वस्-ब्दग-चग्-सुग-पस्।

उनके (इस प्रकार) मूल्यवान वचन, बुद्धवाणी द्वारा प्रेरित होने पर हम (सब) लाभान्वित हुए।

देस-म-ट्रि-ग्चङ-खङ-गि-रि-मो-जिन्द-प्-ल्-द्गे-स्लोङ-फेस-रव्-र्यु-ब्दग-लो-र्यु-दङ-बस्ङो-व्-ब्येद-पर-ङदोद--व्स्वयेस-ते-व्र्जोद-प्-नि।

इस प्रकार अन्धकुटि के चित्रण के सम्पूर्ण होने पर भिक्षु फेस-रव्-र्यु-ब्दग के मन में (इस का) वृत्तान्त और परिणामना की इच्छा हुई (और) घोषणा की।

गङ-जिग-थग-रिङ-लम-ब्यिस-दुब-ग्युर-जिङ।
ग्रोग्स-दङ-म्ज़ङ-पो-दग-गिस-र्नम-स्पङस-पइ।

जो लोग पथ की दूरी से थक कर और सज्जन मित्रों से परित्यागने पर दुखित होते है, (ऐसे) लोगों के लिए इस मनोरम विहार का निर्माण किया। इसका भावार्थ है कि जो लोग संसारिक जीवन की लम्बी यात्रा और मित्र सज्जनों से बिछुड़ने (मौत) के डर से दुःखी होते हैं, ऐसे लोगों के लिए मार्गदर्शक रूप इस मन्दिर का निर्माण हुआ है।

म्जन-दल-क्यि। ल्हई-रिग्स-ङखुङ-व्यङ-छुब-सेम्स-दपङ-गि। म्यि-र्जे, ल्हस-म्ज़द-म्यो-नग-थोङ्स-क्यि-म्योन।

ध्यानपूर्वक सुनें। देववंश में उत्पन्न व्यङ-छुब-ङोद (ने)। (ऐ) मानवेन्द्र, कृष्णवंशों के स्वामी। (यहां कृष्णवंश ति०-म्यो-नग का अभिप्राय बोनधर्म को मानने वालों से है।) इसका अर्थ है कि 10वीं शताब्दी में गुगे-जङ-जुङ में बोन धर्मावलम्बी लोग बहुत थे।

ल्हन-चिग-स्क्ये-वई-म्ख्येन-रब-फुल-व्युङ-वस ।

एक साथ मन में उत्कृष्ट प्रज्ञा के (पुष्प) खिलने पर।

पू-रिग-मुन्-प्-ये-शेस-ऽोद-म्ज़द-देस।

अज्ञानता के अन्धेरे को ज्ञानालोक से (ये-शेस्-ऽोद ने) प्रकाशित किया।

ऽखोर-वर-ऽव्योरद-पर-ग्युद-पई-ग्पल-म्रिद-ल्।
राज्य को सांसारिक दुःख का हेतु जान कर।

स्यु-म्-ल्त्-बुर-ग्ज़िग्स-प्-ब्स्डोन-ऽग्रो-वस।
मृग तृष्णा की भान्ति आगे भागते जाना।

मे-तोग-ऽफ्रेङ-र्जेस-ब्जिन-दु-स्ङस-नस-नि।
मुरझाई हुई पुष्पमाला की भान्ति त्याग दिया।

दे-थम्स-चद्-छोस-फ्यिर-दबुल-म्ज़द-दे।
यह सब (उन्होंने) धर्मोदय हेतु अर्पण कर दिया।

मङऽ-रिस-ग्दुल-र्न्मस-दकर-पोर-डोङ्स-ग्युर- नस।
ङारी प्रान्त की जनता को श्वेत मार्गी
(सद्धर्म = बौद्ध धर्मी) परिवर्तन करने हेतु।

द्पल-ल्दन-ब्क्रऽ-शिस-ब्दे-ग्नस-ग्चुग-लग-खङ ।
श्री मंगल शान्ति स्थान विहार का (निर्माण किया)।

ग्र्यल-ऽखम्स-ऽदिई-स्ग्रोन-मर-ऽदिर-व्जेङस-सो।
इस साम्राज्य के लिए प्रदीप (प्रतीक) निर्माण किया।

स्क्येस-म्छोग-देइ-रिग्स-ग्र्युद-द्वोन-जिद-नि।
इस उत्तम पुरुष पौत्र का वंश में (है)।

गङ्-जिग्-ब्स्लब-प्-ग्सुम-दङ-पङ दग-ल्हन।
(वही) लोग त्रिपिटक धारी (ज्ञाता) नियमित रूप से।

शेस्-रब-ल्जोन-शिङ-दद-पई-र्च-व्-जुग।
और (उनकी इस कृति से) प्रज्ञावृक्ष (वोधिवृक्ष) की जड़ें (उनके राज्य) में विश्वस्त रूप से पक्की हुई।

इस प्रकार इन भित्ति-लेखों से स्पष्ट ही हो जाता है कि इस महान् विहार का निर्माण लो-च-व् रिन-छेन-व्ज़ङ-पो ने नहीं अपितु गुगे-जङ-जुङ के राजा ये-शेस-ऽोद और पश्चात् उनके पौत्र भट्टारक व्यङ-छुव-ऽोद ने किया था। 46 वर्ष के पश्चात् मन्दिर का नव-निर्माण भी हुआ इसका प्रमाण भी प्रदक्षिणा-पथ में मिलता है। ध्यानपूर्वक देखने से मौजूदा चित्रों के नीचे एक अन्य परत चित्रों का है जो अलग शैली में बना है। एक अन्य बात पर ध्यान आकर्षित करना होगा, वह है प्रदक्षिणा-पथ के पूर्वी दीवार पर दो स्थानों पर लंकापति रावण का चित्र दस सिर समेत, उन सिरों के ऊपर गधे का सिर भी चित्रित किया है, की शैली वर्तमान शैली से बिल्कुल भिन्न है जो कि पुरानी शैली का चित्र लगता है। किसी कारणवश इन दो चित्रों को मिटाया नहीं गया है। ऐसा लगता है कि पूर्व का चित्रण वर्तमान के चित्रों से भिन्न था। यानि वज्रधातु की जगह पर वज्रवागीश्वर मण्डल रहा होगा, जिसमें हिन्दू देवी-देवताओं का वर्णन आता है, जिसमें महाशिव और कार्तिकेय स्कन्ध आदि का नाम आता है।

ग्चुग-लग-खङ के अतिरिक्त अन्य सात मन्दिरों का विवरण भी कभी लिखूंगा। परन्तु यह सारे मन्दिर पीछे निर्मित हुए हैं। जोकि हम 17वीं शताब्दी तक पीछे ले सकते हैं। इसमें स्कर-ऽव्युङ मन्दिर सब से पीछे बना है जो एक पुराने गिरे हुए मन्दिर की ढेरी पर बना लगता है। दो अन्य मन्दिर ऽब्रोम-स्तोन-ल्ह-खङ और ऽब्रोम-स्तोन-ल्ह-खङ-छुङ, दोनों का ऐतिहासिक महत्व होने में शक नहीं। ये दोनों भवन आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान आतिश के मुख्य तिब्बती शिष्य और व्कऽ-दम-प् सम्प्रदाय के संस्थापक ऽब्रोम-स्तोन-प-र्ग्यल-वइ -ऽव्युङ-ग्नस से सम्बन्धित है। ग्सेर-ल्ह-खङ के भी भित्तिचित्रों के परिवर्तन इतिहास पर विशेष दृष्टि डालता है।

महत्वपूर्ण जन सूचना

कुल्लू और लाहुल क्षेत्रों के लिए नए टेलीफोन नम्बरिंग स्कीम तथा एस०टी०डी० कोड जो 15 जुलाई 1997 से प्रभावी होंगे।

स्थान	*नया कोड*		*नया पूर्वांक*		*अंक*
किलाड़	01897	+	22	+	-यथोपरि-
उदयपुर	01901	+	22	+	-यथोपरि
केलंग	01900	+	2	+	पुराने नम्बर के अंतिम 4 अंक
जिस्पा	01900	+	33	+	पुराने नम्बर के अंतिम 3 अंक

(सूचना दूरसंचार विभाग के सौजन्य से जनहित में प्रदत)

लाहुली बोलियों के सन्दर्भ में हिमालयी क्षेत्रों की अन्य सदृश बोलियां

-बनारसी लाल

जिस प्रकार हिमालय पर्वत उत्तुंग, विशाल, विस्तृत एवं अनेकानेक उपत्यकाओं से युक्त है, उसी प्रकार हिमालय की कन्दराओं में विविध प्रकार की जनजातियों का भी निवास है।

हिमालय की उपत्यकायों में निवास करने वाले इन लोगों की बोलियां एवं भाषाएं भी भिन्न-भिन्न हैं। हिमालय के धुर पश्चिम में कराकोरम की घाटियों से लेकर पूर्व में अरुणाचल अर्थात् बर्मा की सीमा तक हिमालय का यह क्षेत्र फैला है। यहां अनेक जातियों के निवास होने पर भी सर्वत्र एक समानता दृष्टिगोचर होती है, वह है - यहां की बोली एवं भाषाओं में समानता। इस सारी श्रृंखला में तिब्बती-चीनी परिवार के भाषा-भाषी लोग रहते हैं। भाषा-शास्त्री ग्रियर्सन ने इन भाषाओं एवं बोलियों का विस्तृत सर्वेक्षण किया है, जिस से हम सभी भली-भान्ति परिचित हैं। उनकी स्थापना है कि इस भाषा परिवार में दो मुख्य भेद हैं : तिब्बती-बर्मी तथा स्यामी-चीनी परिवार। भाषा-शास्त्रियों की दृष्टि से इनका मूल स्थान उत्तरी-पश्चिमी चीन में यांगत्से नदी के उत्तरी भाग ह्वांगहो नदी के बीच बतलाया जाता है। कालांतर में तिब्बती-चीनी लोग आक्रमणकारियों के रूप में भारत की ओर बढ़ते गए। ग्रियर्सन का कहना है - 'ऐसा प्रतीत होता है कि तिब्बती बर्मी भाषा-भाषी सर्वप्रथम यांगत्से तथा ह्वांगहो के उपरी भाग में स्थित अपने मूल स्थान से इरावती और चिन्दविन नदी के साथ उत्तर की ओर गये। यहां से सम्भवत: इनमें से कुछ लोग ब्रह्मपुत्र और उत्तर हिमालयवर्ती सांपो नदी की प्रतिकूल धारा की ओर जाकर ब्बत में बस गए। इनमें से कतिपय लोगों ने जल विभाजक रेखा को कर पूर्व में असम प्रदेश से लेकर पश्चिम में पंजाब तक हिमालय की दक्षिणी श्रेणियों को अपने अधिकार में कर लिया।' *भारत का भाषा सर्वेक्षण - खण्ड-1, भाग-1 पृ० 83*

इस प्रकार तिब्बती-बर्मी शाखा के भी दो उपभेद हैं - तिब्बती- हिमालय शाखा और असम-बर्मी शाखा। हिमालय की भाषाओं और बोलियों की इस यात्रा के कारण ही पूर्व से पश्चिम तक की भाषा एवं बोलियों में सर्वत्र कुछ भाषा साम्य, कुछ शब्द-साम्य मिल जाते है।

विशाल हिमालय की उपत्यकाओं के मध्य हिमाचल प्रदेश का लाहुल घाटी यद्यपि एक छोटी सी घाटी है तथापि भाषा एवं बोली की दृष्टि से यह बहुभाषी तथा बहुबोलियों का क्षेत्र है। भाषा-शास्त्रियों ने यहां की बोलियों को भोटी, मनचदी (पट्टनी), बुनन (गाहरी), तिननी एवं रंगलोई, इन मुख्य बोलियों में वर्गीकृत किया है। इनके अतिरिक्त भी शिप्पि, डागी तथा लोहारी आदि बोलियां भी हैं, यद्यपि इनकी संख्या अत्यल्प है। इन अल्पसंख्यक भाषा- भाषी लोगों को यहां के आदिम निवासी के रूप में स्थापित किया जाता है। क्योंकि इनकी बोलियों में आर्य-भाषाओं तथा संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव खोजा जा चुका है। उपर्युक्त पांच बोलियों में भिन्नताएं होने पर भी कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग सभी में समान रूप से किया जाता है। इन शब्दों का उत्स भोट-भाषा है। इस स्थापना में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए। उदाहरणार्थ कुछ शब्दों को ले सकते हैं। यथा *मे* = (आग), *शिंङ (सिंग)* = लकड़ी, इत्यादि।

इन बोलियों का आपस में विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि कुछ तो आपस में काफी समान हैं तथा कुछ भाषायी तत्व ऐसे हैं जो उन्हें एक दूसरे से पृथक करती हैं। यदि हम भोटी भाषा के शब्दों को लें तो मनचदी में इसके बहुत कम शब्द मिलते हैं। वहीं रंगलोई, तिननी और गाहरी में क्रमश: अधिक अधिक पाते हैं। गाहरी, तिननी एवं रंगलोई बोलियों में कुछ ऐसे भाषायी तत्व हैं जो इन्हें एक दूसरे के समीप लाते हैं तथा इनका कोई प्रभाव भोटी एवं मनचदी में नहीं मिलता। कुछ भाषायी तत्व ऐसे हैं जो मनचदी, तिननी तथा रंगलोई में एक समान पाते हैं। इसी प्रकार गाहरी (बुननी) के अपने विशिष्ट भाषा तत्व हैं जो इसे यहां की अन्य बोलियों से पृथक करते हैं। यहां विशेष अवधेय यह भी है कि गाहरी तिननी एवं रंगलोई से बहुत मिलती-जुलती हिमाचल प्रदेश के किन्नौर क्षेत्र की किन्नौरी बोली भी है। इसमें भोट शब्दों की बहुलता तो है ही साथ ही इसके दूसरे भाषायी तत्व गाहरी, तिननी तथा रंगलोई से मिलते है।

सम्भवत: यह जानकर आश्चर्य होगा कि गाहरी बोली से काफी मिलती जुलती बोली उत्तर प्रदेश के उत्तरकाशी एवं चमोली ज़िले के माणा गांव वासी तथा नीति वैली के तीन गांव नीति, बम्पा एवं गमशाली वाले बोलते है। माणा गांव प्रसिद्ध धाम बदरीनाथ से करीब चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह भारतीय सीमा का अन्तिम गांव है। यहां से करीब 59 किलोमीटर की दूरी पर भारत और तिब्बत की सीमा है। यहां भोटिया जनजाति के लोग निवास करते है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से करीब 3100 मीटर है। इस गांव की जनसंख्या करीब 1800 के आसपास है। गांव में आठ-दस जातियों के लोग निवास करते है। गांव में इण्टरमीडियेट कॉलेज भी है। क्योंकि भारी बर्फ से सर्दियों में पूरा बदरीनाथ क्षेत्र बन्द हो जाता है तथा मन्दिर कपाट

बन्द होते ही यहां के सभी लोग नीचे तराई पर उतर आते हैं। यहां इन लोगों के शीतकालीन निवास स्थान है। माणा गांव वासी सर्दियों में गोपेश्वर, धिंधराण, नेगवाड, सिरोखोमा एवं सेंटुडा में चले आते हैं। यहां तक कि विद्यालय का भी स्थानान्तरण हो जाता है। अब तो बहुत थोड़े ही लोग गर्मियों में अपने गांव आते हैं, क्योंकि गांव में फसल अधिक नहीं होती। अत: लोग शहरों की ओर उन्मुख हैं और अपने मूल स्थान से पराङ्मुख होते जा रहे हैं।

माणा गांव के समान ही बोली बोलने वाले वैली के तीन गांव नीति, बम्पा और गमशाली हैं। यहां पर भी भोटिया जनजाति के लोगों का निवास है। इन तीनों गांवों की जनसंख्या भी करीब 600-700 है। यह क्षेत्र जोशीमठ से उत्तर-पूर्व में स्थित है तथा यह भी भारतीय सीमा का अन्तिम गांव है। यहां के लोग भी सर्दियों में अस्थाई रूप से कोडिया, सेंमला, बोंला, छिंनका आदि गांव में आ जाते हैं।

माणा गांव अलकनन्दा एवं सरस्वती के संगम के पास दायीं ओर स्थित है। अलकनन्दा और सरस्वती के संगम क्षेत्र को केशव प्रयाग कहा जाता है। यह प्रयागों में पहला प्रयाग है। परन्तु इनकी गणना पंच प्रयागों में नहीं की जाती है। फिर भी यहां अलकनन्दा एवं सरस्वती नदी का भव्य संगम देखने को मिलता है। क्या यह वही सरस्वती नदी है जिसका वर्णन पौराणिक आख्यानों में मिलता है और जिसका संगम इलाहाबाद में गंगा और यमुना के साथ होता था? कदाचित् हां कदचित् नहीं। क्योंकि सरस्वती नदी इदानीं लुप्त है। माणा गांव का देवता घण्टाकर्ण है जो बदरीनाथ के भाई माने जाते हैं और इनकी मां मूर्ति है। माता मूर्ति का मन्दिर संगम के ठीक उस पार है तथा घण्टाकर्ण का मन्दिर गांव के मध्य।

बदरीनाथ के विग्रह के सम्बन्ध में यहां के स्थानीय लोगों का कथन है कि इसका आगमन तिब्बत के थोलिङ् मठ से हुआ है। सीमा पार तिब्बत का पहला ही गांव छयरङ् (सम्भवत: छपरङ्) पड़ता है। छपरङ् में थोलिङ् मठ स्थित है। यहां के स्थानीय लोग बदरीनाथ को 'नम लो' कहते हैं। स्थानीय बोली में इसका अर्थ 'नया गांव' बतलाया गया। किसी समय बदरीनाथ का मन्दिर माणा गांव के आधीन ही था परन्तु यहां के लोग व्यापार आदि अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे और धीरे-धीरे उस पर माणा गांव का अधिकार जाता रहा।

माणा गांव प्राचीन भारत तिब्बत व्यापारिक मार्ग पर अवस्थित है। यदि यह व्यापारिक मार्ग न भी रहा हो तो यह आवागमन का एक मुख्य मार्ग अवश्य रहा है जिसके अवशेष अब भी यहां मौजूद हैं। सम्भवत: कभी यहां के लोग बौद्ध धर्मावलम्बी रहे हों या इसके प्रभाव में, क्योंकि यह जनजाति स्वयं को भोटिया कहलाती है। यद्यपि आज यहां के सभी लोग स्वयं को हिन्दु धर्मावलम्बी बतलाते हैं तथापि गहराई से यहां की संस्कृति और जनजीवन में झांकें तो आज भी हमें ऐसे अनेक जीवन्त तत्व दृष्टिगोचर होते हैं जिनके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सदियों पूर्व यहां के लोग भोट संस्कृति और बौद्ध धर्म के प्रभाव में रहे होंगे। यहां के बुज़ुर्ग श्री धर्मसिंह, जिनकी आयु करीब 76 वर्ष है, बतलाते हैं कि वह स्वयं बचपन में कई बार भेड़-बकरियों के साथ तिब्बत यात्रा कर चुके हैं। उन्हें याद है कि इस रास्ते से तिब्बत के लामा लोग आया जाया करते थे।

भोट देश एवं हिमालयी क्षेत्रों में जहां भी बौद्धों का निवास क्षेत्र है वहां मार्ग के दोनों ओर प्राय: स्तूप एवं मणि दीवारें पाई जाती हैं। माणा गांव के मध्य आज भी इस प्रकार के मणि दीवारों के अवशेष विद्यमान हैं जहां पत्थरों पर भोट लिपि में *'ॐ मणि पद्मे हूं'* का मंत्र खुदा है। इस मन्त्र उत्कीर्ण पत्थरों के मध्य प्रस्तर खण्डों पर उकेरे गये अवलोकितेश्वर एवं बुद्ध के चित्र हैं। एक अन्य देवता का भी चित्र है परन्तु यह अधिक घिस जाने के कारण पहचान में नहीं आ रहा है। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि यह किस देवता का चित्र है। यह मुकुटधारी आलीढा अवस्था में विराजमान है। इसी प्रकार गांव के ऊपर व्यास गुफा है। मान्यता है कि व्यास जी ने यहीं महाभारत की रचना की थी। इस गुफा में भी एक बड़ा सा प्रस्तर खण्ड है जिस पर *'ॐ मणि पद्मे हूं'* का मन्त्र भोट अक्षरों में उत्कीर्ण है। गुफा में व्यास जी की मूर्ति प्रस्थापित है जो देखने में काफी नई लगती है। व्यास जी की मूर्ति के दोनों ओर दो प्रस्तर खण्ड हैं जिन में से एक पर बुद्ध का चित्र तथा दूसरे में मुकुटधारी आलीढावस्था में स्थित उसी देवता का चित्र है जो गांव के मध्य भी है, परन्तु यहां चित्र अधिक स्पष्ट है, लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह तारा का चित्र है। गांव के प्रधान श्री रामसिंह कण्डारी से पता चला कि पुरातत्व विभाग वाले भी यहां पहुंचे थे और उन्होंने इनकी फिल्में भी बनाई हैं।

इसी प्रकार यहां की संस्कृति और जनजीवन में देखें तो भोट संस्कृति का स्पष्ट प्रतिबिम्ब आज भी दिखलाई पड़ता है। यहां स्त्रियां जो चोगा पहनती हैं वह तिब्बती जनजातियों के पहनावे से बहुत मिलता-जुलता है तथा यहां की स्थानीय बोली में इसे *'लावा'* कहते हैं। *'लावा'*

शब्द स्वयं भोट शब्द है। इसी प्रकार खान-पान में नमकीन मक्खनी चाय का प्रचलन हो या नमकीन चाय के साथ सत्तु प्रस्तुत करने का, यह वे तत्व हैं जो इंगित करते हैं कि यहां के लोग कभी भोट संस्कृति से जुड़े थे। भौगोलिक परिस्थितिवश अलग-थलग हो जाने से ये अपने मूल से कट गये।

यहां के स्थानीय लोगों की दो बातें भी इस ओर इंगित करती है कि बदरीनाथ का मन्दिर कभी बौद्ध मन्दिर रहा। एक तो यह कि इसका सम्बन्ध तिब्बत के थोलिङ् मठ से जोड़ते हैं और बताते हैं कि इसका आगमन वहीं से हुआ। दूसरा यह कि माणा वासियों का मानना है कि पहले कभी बदरीनाथ का मन्दिर उनके अधीन था। यत: माणावासी भोटिया जनजाति के है। अत: उनके अधीन मन्दिर भी भोट संस्कृति और बौद्धधर्म से जुड़ा होना चाहिए । तथापि आज ऐसा कोई प्रमाण अवशिष्ट नहीं है । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने 'गढ़वाल' नामक पुस्तक में बदरीनाथ मन्दिर के बौद्ध मन्दिर होने के सन्दर्भ में विस्तृत एवं प्रामाणिक विवेचन किया है।

अब यहां की बोली के सन्दर्भ में कुछ दृष्टि डालें। यहां की बोली के तत्व किन्नौरी तथा लाहुल के तिननी, रंगलोई तथा गाहरी बोली से मिलते जुलते हैं। वाक्य विन्यास तथा उच्चारण की दृष्टि से और अनुपातत: हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यहां की बोली लाहुल के गाहरी बोली के समीप है। यद्यपि अन्तिम निष्कर्ष तक तब तक नहीं पहुंचा जा सकता है जब तक इसका गहराई से अध्ययन न करें। क्योंकि इनमें कुछ शब्द हैं जो उपर्युक्त सभी बोलियों में समान रूप पाये जाते हैं। जैसे पानी के लिए *'ती'* का प्रयोग। इस प्रकार के शब्दों में भोट प्रभाव खोजा नहीं जा सकता। माणा एवं नीति वैली की बोली को हम लाहुल के गाहरी बोली के अत्यन्त समीप इस लिए पाते हैं क्योंकि जो भाषायी विशेषताएं हैं वे इन दोनों में समान हैं। उदाहरणार्थ - घर के लिए *'क्युम'*, लस्सी या दूध के लिए *'बोती'*, या ऊन के लिए *'चम'* इत्यादि। यद्यपि यह तिननी में भी प्रयुक्त होते है परन्तु वाक्य विन्यास एवं उच्चारण शैली गाहरी से मिलती है।

दूसरी ओर हमें इन बोलियों के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकालते समय शङ् शुङ् भाषा का भी ध्यान रखना होगा। प्राचीन समय में इन सारे सीमावर्ती क्षेत्रों में शङ् शुङ् भाषा का भी व्यापक प्रभाव था। तीसरा तथ्य इसको भी नज़र अन्दाज़ नहीं करना चाहिए कि इन सभी जनजातियों की बोलियां अपने मूल स्थान की भाषा से भी जुड़ी हैं। कालक्रम में विभिन्न झुण्डों में अलग-अलग दिशाओं में जाकर बस जाने से और वहां के स्थानीय आदिवासियों के बोलियों के प्रभाव से इनमें अनेक विकृतियां क्यों न आ गयी हों, अपने मूल स्थान के तत्व आज भी इनमें विद्यमान हैं। इसलिए भाषाशास्त्रियों की इन स्थापनाओं का अपलाप भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि हिमालयवर्ती इन क्षेत्रों की बोलियों में ऐसे अनेक शब्द मिल जाते हैं जो तुर्किस्तान एवं चीनी भाषाओं में पाये जाते हैं। जैसे *'टंका'* शब्द रुपये या पैसे के लिये तथा घोड़े के लिए *'रँग'* शब्द। *'रँग'* का मूल चीनी भाषा है। *'रँग'* शब्द का आधुनिक रूप *'मँ'* है, *'रँग'* का *'मँ'* उच्चारण परिवर्तन कालगत है। उसी प्रकार तुर्किस्तानी शब्दावली में रुपये के लिएं *'टंका'* शब्द व्यवहृत होता था। उपर्युक्त दृष्टियों पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इतिहास के उस संक्रमण काल में विशेषकर लाहुल के गाहरी क्षेत्र के लोग तथा नीति वैली के तीनों गांव के लोगों तथा चमोली गढ़वाल के माणा वासियों का मूल स्थान एक रहा होगा। उस संक्रमण काल में विस्थापित होते-होते ये अपने झुण्ड से बिछुड़ गए होंगे और विपरीत दिशाओं में जा कर आबाद हो गए होंगे। भाषा एवं बोली बहुत ही परिवर्तनशील तत्व है विशेषकर बोलियों के सन्दर्भ में तो परिवर्तनशीलता और भी अधिक हो जाती है। अन्त में बोलियों एवं भाषाओं के शब्दों के इतिहास के सम्बन्ध में प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ग्रियर्सन के इस उदाहरण को ले सकते हैं - 'तिब्बती चीनी शब्दों के इतिहास की तुलना उन बहुसंख्यक पत्थरों से की जा सकती है जिन्हें कोई व्यक्ति समुद्र में उसके विभिन्न तटवर्ती स्थानों में फैंकता है। इनमें से एक पत्थर धारा में गिरता है और अपरिवर्तित रहता है, दूसरा कीचड़ में गिरता है और शताब्दियों पश्चात् अपनी ऊपरी सतह को भी इतना मज़बूत बना लेता है कि यह बिलकुल ही पता नहीं चलता है कि इसके अन्दर क्या है? एक अन्य तूफानी धारा की चट्टानों में गिरता है और धक्के खाते-खाते इस कदर घिस जाता है कि उसे कोई भूगर्भशास्त्री ही पहचान सकता है। एक और ऐसे स्थान में चला जाता है जहां वह मूल का विद्रूप मात्र बन जाता है, और एक अन्य किसी चट्टान में फंस कर तीव्रधारा से जर्जर होकर ऐसा रूप धारण कर लेता है कि केवल चिह्न मात्र ही अवशिष्ट रह जाता है।' *भारत की भाषा सर्वेक्षण - खण्ड-1, भाग-1, पृ०81*

लाहुल में कैन्सर के बढ़ते पन्जे

-डॉ० रंजीत वेद

चन्द्रताल के छटे एवं सातवें अंक में इस विषय पर एक लेखक ने कुछ टिप्पणी एवं अपील की है।

वास्तव में कैन्सर जो कुछ सालों पहले तक सारी दुनिया के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ था क्योंकि तब इस का इलाज पूर्णरूप से पता नहीं था। मगर आज स्थिति बदल चुकी है, कैन्सर आज पूरी तरह इलाज युक्त है बशर्ते बीमारी का पता शुरू में ही चल पड़े।

लाहुल के संदर्भ में, इस बीमारी ने आज तक प्रमुख जानलेवा बीमारी का स्थान ले लिया है। इस के कई कारण है। लेखक महोदय ने लाहुली चिकित्सकगण से 'क्या है' का समाधान मांगा है। लाहुली चिकित्सक कभी भी इस तकियाकलाम की खुमारी में नहीं है कि 'पहले रोगों की पहचान के साधन उपलब्ध नही थे'। यह मात्र बहाना नही है, सौ फ़ी सदी हकीकत है। पहले अज्ञानता, साधनों की कमी के कारण यह बीमारी सामने नहीं आ पा रही थी। इस कारण अनेक जानें इस बीमारी के शिकार बनी। सर्वप्रथम, इसके लिए शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। आज स्वास्थ्य विभाग से जुड़े लोग, स्वयंसेवी संगठन एवं प्रसार माध्यम इस बारे लगातार लोगों को शिक्षित करने में लगे हुए हैं। इन सब कोशिशों के बावजूद पूर्ण सफलता नहीं मिल पा रही है। आज भी जब टी०वी० में टाटा कैन्सर ट्रस्ट वालों का धूम्रपान विरोधी विज्ञापन आता है तब शिक्षित युवा स्मोकर उस समय टी०वी० यह कहकर बन्द कर देते है 'क्या बोर कर रहा है!'

खैर, कोशिश जारी रहे तो बदलाव ज़रूर आएगा, यह प्रकृति का नियम है। लाहुल में देश के बाकी हिस्सों की तरह निम्न प्रकार के कैसर प्रमुख है :-

(क) औरतों में - स्तन *(breast)* एवं बच्चादानी के मुंह का *(cervix)*। (ख) मर्दों में - फेफड़ों का *(lungs)*

क. औरतों में

बच्चादानी के मुंह का कैसर -

सम्भावित प्रमुख कारण :

1. छोटी उम्र में शादी।
2. अधिक बच्चों को जन्म देना।
3. कई पुरुषों के साथ सम्पर्क।
4. कमज़ोर सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति।

इन सभी कारणों से हम अपने आप को दूर रख सकते हैं। ज़रूरत है जागरूकता की, लोगों में चेतना का होना। जब भी औरत को सफेद पानी कई महीनों तक आने लगे, पीठ में लगातार दर्द रहे, कई बच्चों की मां हो, पति से सम्पर्क के बाद खून आए या ऐसे ही खून आने लगे, खुद दिन-ब-दिन कमज़ोरी महसूस करे या कहीं गिलटियां पड़े। इन में से कोई एक-दो लक्षण होने पर तुरन्त किसी अस्पताल में चैकअप करा लेना बेहद ज़रूरी है। आप कई स्वास्थ्य संस्थाओं में 30-35 साल से ऊपर की औरतों का चाहे उन्हें कोई तकलीफ न हो, एक साधारण से टैस्ट होता है जिसे *पैप स्मियर (pap smear)* कहते है, करना अनिवार्य कर दिया है। शायद इन्दिरा गान्धी मैडिकल कॉलेज, शिमला में भी ऐसी सुविधा है।

मात्र एक मिनट का समय लगता है, कोई दर्द नहीं मात्र बच्चादानी के मुंह पर एक लकड़ी का चम्मच जैसा फैरा कर *स्लाइड* में निरीक्षण के लिए लिया जाता है। देखने में साधारण मगर बहुत ही महत्त्वपूर्ण टैस्ट है। बीमारी के शुरुआत को इस टैस्ट द्वारा पता किया जा सकता है। जैसे कि कैन्सर का इलाज बीमारी के *स्टेजों* पर निर्भर करता है उसी प्रकार बीमारी की आरम्भिक पहचान *(prognosis)* भी *स्टेजों* पर निर्भर करती है। अत: मै लाहुल की हर उस औरत को, जो 30-35 साल से ऊपर उम्र की है, शादीशुदा एवं बच्चों की मां है, यह सुझाव दूंगा कि साल में एक बार यह निरीक्षण करा लें, साल में न कर सकें तो दो-तीन सालों में एक बार तो जरूर करा लें, ऊपर व्यक्त कारणों एवं लक्षणों वाली औरतों के लिए तो यह टैस्ट कराना बेहद जरूरी हो जाता है ताकि शुरुआत में ही बीमारी का पता चला सके।

स्तन कैन्सर -

बीमारी में सहायक प्रमुख कारण :

1. पारिवारिक इतिहास, जैसे मां, नानी, मौसी एवं बहनों में बीमारी रही हो।
2. शादीशुदा मगर कोई सन्तान न हो।
3. अक्सर आर्थिक रूप में सम्पन्न लोगों में ज्यादा देखा गया है।

लक्षण :

1. स्तन के किसी हिस्से में गिलटी या सूजन।
2. निप्पल से तरल या खून का निकलना।
3. शरीर के किसी हिस्से में गिलटी, खासकर बाजू के नीचे *(ऐक्सिला)* में।

हर औरत को चाहिए अपने स्तनों का खुद समय-समय पर निरीक्षण करती रहें। शीशे के सामने खड़े होकर देखें कि कोई सूजन या आकार में बदलाव तो नही है। ऐसी स्थिति में तुरन्त डाक्टरी सलाह लें।

ख. मर्दों में

प्रमुख कैन्सर फेफड़ों का है।

मुख्य कारण :

1. सिगरेट-बीड़ी का सेवन। अक्सर यह संख्या पर निर्भर करता है यानि आप दिन में कितना पीते है।
2. कमरों का हवादार न होना - धुंआ निकासी का ठीक प्रबन्ध न होना।

आज पश्चिमी देशों में इलाज से परहेज़ भली एवं बचाव व सामाजिक चिकित्सा *(preventive and social medicine)* का सिद्धान्त बहुत ज़ोर पकड़ रहा है। यह दृष्टिकोण सही भी है क्योंकि अनेक बीमारियों का मूल कारण हम खुद है। इस के लिए ज़रूरी है शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार। हर बीमारी के प्रति मूलभूत ज्ञान हर आदमी में हो तो कई बीमारियां हमारे नज़दीक भी नहीं आ पाएंगी। अत: ज़रूरत है जागरूकता की, हर शिक्षित लाहुली को इस में शामिल होकर समाज में एक जागरूकता अभियान शुरू करना होगा। *चन्द्रताल* इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है, ताकि हर मरीज़ को आधारभूत बीमारी के प्रति ज्ञान हो। तभी हम अपने लाहुल को इस बीमारी के चंगुल से मुक्त कराने में सफल हो पाएंगे।

मेहंदी से .... पृष्ठ 9 का शेष

होता? क्योंकि आज तक लाहुल की नारी ने कभी पुरुष से कोई शिकायत नहीं की, कभी अपने कर्म का फल नहीं मांगा। शायद गीता का पाठ मां की कोख से पढ़ कर आती है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा
ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

कर्म की मूर्ति मां आज अपने बेटे के लिए मन्नत मांग रही है - उस के सुन्दर उज्ज्वल भविष्य के लिए।

जनजातीय क्षेत्र स्पीति में विभिन्न ईंधनों का मूल्य विश्लेषण

-बी०एस० राणा, तत्कालीन डी०एफ०ओ०: काज़ा

स्पीति उपमंडल हिमाचल प्रदेश के मध्य हिमालयी क्षेत्र के उच्च-शीत मरुस्थलीय भाग में पड़ता है। आवृत्त वर्षा (rain shadow) क्षेत्र होने के कारण यहां वर्षा नगण्य ही होती है। अत: सर्दियां बहुत कठोर होती है। इस दौरान पारा -40 डिग्री सेल्सियस तक नीचे गिर जाता है। इस कठिन समयावधि से उभरने के लिए स्थानीय लोग बड़ी मात्रा में जलाने की लकड़ी, झाड़ियां, पत्थर, कोयला, गोबर और मिङण (भेड़-बकरियों का मल) तक एकत्र कर लेते है। कोयले की आपूर्ति तो अन्य विभाग द्वारा की जाती है, लेकिन जलाने की लकड़ी की आपूर्ति वन विभाग द्वारा स्थानीय लोगों को सबसीडी युक्त कीमतों पर की जाती है। प्रति वर्ष वन विभाग द्वारा कुल्लू, किन्नौर और रामपुर आदि वन मंडलों से भारी मात्रा में जलाने की लकड़ी हिमाचल प्रदेश राज्य वन निगम के माध्यम से आपूर्त की जाती है। यद्यपि लकड़ी की यह भारी मात्रा मृत, मृतप्राय: और रोग ग्रस्त पेड़ों से साल्वेज मार्किंग (वन कबाड़ निशान देही) कर के निकाली जाती है, तथापि आने वाले वर्षो में इस भारी वार्षिक आवश्यकता की पूर्ति करना कठिन होगा। दूसरा, स्पीति एक शीत-मरू-क्षेत्र होने के कारण यहां प्राकृतिक संसाधन अत्यन्त सीमित है। तथाकथित जंगल जो प्राकृतिक रूप से उगे झाड़ियों के समूह है, वे भी घाटी की तलहटी के साथ-साथ ही पाए जाते है। वन विभाग ने कुछ पादप प्रजातियों का रोपण कर के इस में वृद्धि की है। घाटी के ये प्राकृतिक संसाधन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। इस समस्या से निजात पाने एवं जलाने की लकड़ी का कोई विकल्प प्रस्तुत करने के लिए यह अनिवार्य है कि ईंधन की आवश्यकता एवं खपत का विश्लेषण किया जाए। सन् 1995-96 की सर्दियों में मैने बुखारी के प्रतिदिन अथवा प्रति एकक ईंधन खपत दर का तुलनात्मक अध्ययन किया है। यह तुलनात्मक विवरण इस प्रकार से है :-

क. जलाने की लकड़ी

सरकार ने तन्दूर के लिए लकड़ी 32 कि० ग्रा० लकड़ी प्रति तन्दूर, प्रतिदिन अर्थात् 7 घण्टे (प्रात: दस से शाम पांच बजे तक) के लिए निर्धारित कर रखी है। कठिनतम शीत काल में यह 32 कि०ग्रा० लकड़ी भी पर्याप्त नहीं है। यदि हम 32 कि०ग्रा० लकड़ी की मूल्य गणना करें तो विश्लेषण इस प्रकार होगा -

स्थानीय लोगों के लिए

वर्ष 1995-96 में सरकार ने नर्म तथा कठोर लकड़ी के मूल्य क्रमश: 122 रुपये तथा 145 रुपये प्रति क्विंटल निर्धारित किया है। यह ढुलाई खर्चे से मुक्त है। अत: 32 कि०ग्रा० नर्म लकड़ी का मूल्य 39 रुपये और कठोर लकड़ी का मूल्य 46.40 रुपये प्रति दिन पड़ता है।

सरकारी विभागों के लिए

सरकारी विभागों के लिए नर्म एवं कठोर लकड़ी के मूल्य क्रमश: 175 रुपये तथा 206 रुपये प्रति क्विंटल निर्धारित किया गया है। इस के अतिरिक्त 50 पैसे प्रति क्विंटल प्रति कि०मी० की दर से ढुलाई खर्चा लिया जाता है। हि०प्र० राज्य वन निगम के कुल्लू या रामपुर के किसी भी सड़क से लगते डिपू की काज़ा से औसत दूरी 350 कि०मी० के लगभग है। अत: नर्म लकड़ी का प्रति क्विंटल मूल्य 350 रुपये बनता है (175+175=350 रुपये-लकड़ी की कीमत+ढुलाई खर्चा)।

तदनुसार 32 कि०ग्रा० नर्म लकड़ी का मूल्य 112 रुपये तथा कठोर लकड़ी का मूल्य 122 रुपये पड़ता है। इस के अतिरिक्त नर्म लकड़ी ईंधन के लिए दी जाती है उसे स्थानीय लोग प्राय: भवन निर्माण एवं अन्य उद्देश्यों में इमारती लकड़ी के रूप में प्रयोग कर लेते हैं। जलाने की लकड़ी के इमारती लकड़ी में होने वाले इस प्रकारान्तरण से विभाग के उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है जिस के लिए विभाग बड़ी मात्रा में सबसीडी युक्त जलाने की लकड़ी की आपूर्ति करती है। इस के अतिरिक्त प्रतिवर्ष सभी डिपू प्रभारी 15 से 20 प्रतिशत सूखन (driage) का दावा करते हैं जो कि पुन: अवश्यम्भावी अपव्यय है। ढुलाई, चढ़ाई, उतराई, तुलाई, एकत्रीकरण, फड़ाई आदि ऐसे खर्चे है जिन से बचा नहीं जा सकता और जो लकड़ी के मूल्य में और वृद्धि कर देते हैं।

ख. मिट्टी का तेल

हाल की में मिट्टी के तेल की बुखारियां स्पीति घाटी में शीत निवारण के लिए पहली बार प्रयोग में लाई गई जो स्थानीय लोगों के लिए एक नई चीज़ है। इस तेल की बुखारी के खपत दर की गणना विभिन्न प्रयोक्ताओं एवं एजेंसियों से प्राप्त सूचना के आधार पर की गई है। एक बुखारी की सामान्य खपत प्रतिदिन या 7 घण्टे (प्रात: दस बजे से शाम पाच बजे तक) में 4-5 लिटर के लगभग है। इस 4-5 लिटर मिट्टी के तेल की कीमत 3 रुपये प्रति लिटर की दर से 12 से 15 रुपये पड़ता है। तेल की बुखारी की सूरत में अपव्यय भी नगण्य है। क्योंकि बुखारी का नल तेल के प्रवाह को प्रयोक्ता की आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित करता है। लकड़ी और कोयले के तन्दूर की अवस्था में यह चपरासी पर निर्भर करता है जो तन्दूर को हर समय गर्म रखता है, चाहे प्रयोक्ता प्रयोग कर रहा हो या नहीं। तेल की बुखारी अन्य बुखारियों की तुलना में कमरे तथा आसपास को प्रदूषण रहित रखने में भी मददगार है। तेल की बुखारी के साथ एकमात्र समस्या यह है कि प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति को इसे ठीक से इस्तेमाल करना अभी नहीं आता है। इस के लिए उन्हें पूर्ण प्रशिक्षित करना होगा। ये सभी उपाय मुख्यत: गर्माइश के लिए प्रयोग किए जाते हैं। खाना पकाने के लिए एल०पी०जी० के चूल्हों का प्रयोग घर-घर में किया जा रहा है जो सर्दियों में भी कारगर है।

ग. कोयला

कोयले के तन्दूर की अवस्था में प्रतिदिन, प्रति तन्दूर 18 कि०ग्रा० कोयला सरकार द्वारा निर्धारित किया गया है। कोयले का वर्तमान बाज़ार पर 1996-97 के लिए 500 रुपये प्रति क्विंटल है। अत: एक तन्दूर पर प्रतिदिन या 7 घण्टे (दस बजे प्रात: से पांच बजे शाम तक) का खर्चा 90 रुपये पड़ता है।

तुलनात्मक तालिका

क्रम	किस्म	निर्धारित मात्रा	दर/क्विंटल	मूल्य/रु.
1.	नर्म लकड़ी	32 कि०ग्रा०/दिन/बुखारी	175	112
2.	कठोर लकड़ी	-''-	206	122
3.	कोयला	18 कि०ग्रा०/दिन/बुखारी	500	90
4.	मिट्टी तेल	4-5 लि०/दिन/बुखारी	3	12 15

(7 घण्टे में खपत जो गणना की गई)

उपर्युक्त तुलना से स्पष्ट संकेत मिलता है कि मिट्टी तेल की बुखारी लकड़ी और कोयले की बुखारी का सब से सस्ता व उत्तम विकल्प है। अब यह प्रयोगकर्त्ता पर निर्भर करता है कि वह पैसे बचाना चाहता है अथवा नहीं। मिट्टी के तेल की दर लकड़ी और कोयले की अपेक्षा कम होने के अतिरिक्त कुछ अन्य भी योगात्मक बिन्दु है जिन्हें नीचे दर्शाया गया है :-

1. मिट्टी तेल का भण्डारण लकड़ी और कोयले की तुलना में आसान है।
2. कमरे तथा आस-पास को प्रदूषण मुक्त रखता है।
3. परिवहन में आसान है।
4. चढ़ाई, उतराई, चिणाई, फड़ाई, तुड़ाई की आवश्यकता नहीं।
5. बुखारी में नल व्यवस्था के कारण अपव्यय नहीं।
6. बार-बार हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं।
7. आवश्यकतानुसार नियंत्रित मात्रा में गर्मी पैदा की जा सकती है।

नोट :- तालिका में मिट्टी तेल का मूल्य सबसीडाइज्ड पर अनुसार दर्शाया गया है जब कि उसे खुले बाज़ार दर के अनुरूप दर्शाया जाना चाहिए। जो कि उस समय संभवत: 10/- रुपये के आस पास रहा होगा।

-अनुवादक

"दूरियां"

मन्ज़िल को पाने की चाह में
तमाम उम्र चलता रहा
दूरियां मेरे और मन्ज़िल के दरमियां
बढ़ती ही रही, चलता-चलता अब जब
थक गया हूं, दूरियां कम हो गईं,
ज़िन्दगी और मौत के दरमियां।

-युसुफ

विपणन प्रणाली का महत्व

-याद राम, प्रबन्ध निदेशक, एल०पी०एस०ा

विपणन व्यवस्था व्यापारिक क्षेत्र का एक अभिन्न अंग है, पुरानी विपणन व्यवस्था के मुताबिक उपभोक्ता उन सभी वस्तुओं को स्वीकार कर लेता जो खुद उत्पादकों ने पैदा की हों। इस तरह उत्पादकों का मूल महत्व यह होता कि जो मर्ज़ी पैदा करो, बिना उपभोक्ता के गुण-दोष को देखकर, मगर अब यह सोच बदल गई है; बदलते युग में विपणन व्यवस्था उपभोक्ताओं की मानसिकता को नज़र में रखकर की जाती है, उत्पादकों को यह छूट नहीं है कि जो मर्ज़ी पैदा करें। अपितु उपभोक्ता क्या चाहते हैं, कैसे और कब। अत: विपणन व्यवस्था के तहत एक तरफ उत्पादक है और दूसरी तरफ उपभोक्ता - विपणन व्यवस्था इन दोनों के बीच की कड़ी है। दूसरे शब्दों में, विपणन व्यवस्था का कार्यक्षेत्र है। वस्तुओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक सुव्यवस्थित ढंग से पहुंचाना, अथवा उत्पादकों को उपभोक्ताओं की ज़रूरत के मुताबिक कब चाहते है, कैसे चाहते है, यह व्यवस्था देखने में जितनी सरल नज़र आती है, वास्तव में उतनी सरल नहीं है।

अत: आधुनिक विपणन व्यवस्था का मूल उद्देश्य है उपभोक्ताओं की ज़रूरत को सन्तोषजनक ढंग से पूरा करना; इस प्रकार विपणन व्यवस्था में सिर्फ उत्पादकों को इधर से उधर करना नहीं, अपितु अन्य सारे वह कार्य जिन से उपभोक्ताओं की सन्तुष्टी हो - जैसे आर्थिक सहायता, शीत गृह भण्डारण, risk bearing and after sale service, etc.

विपणन व्यवस्था में निम्नलिखित कार्य है। जैसे :

1. Collection of surplus of agricultural production.
2. Transport to the nearby assembling centre.
3. Grading, standardisation and packaging.
4. Processing.
5. Ware-housing.
6. Transport to consuming centres, bringing buyers and sellers together for ultimate sale to consumers.

कृषि उत्पादकों की सहकारी विपणन व्यवस्था

किसान का जोखिम केवल खेतों तक ही सीमित नहीं है। इससे अधिक उसका जोखिम मण्डी में भी बना रहता है, यदि विपणन की प्रणाली में कृषकों का स्वयं कोई नियन्त्रण न रहे, दलालों, बिचौलियों, आढ़तियों, तिजारतियों इत्यादि के संगठित और सशक्त समूह ने उन्हें उचित मूल्य से वंचित रख सकते है। यही कारण है कि आज भी कृषि उपज के विक्रय मूल्य का निर्धारण स्वयं किसान जो उत्पादक है, नहीं कर पाता, अपितु मूल्य का निर्धारण नीलामी से ही होता है। कृषि क्षेत्र को छोड़कर अन्य सभी उत्पादकों को अपनी वस्तु के मूल्य निर्धारण में पूरा अधिकार होता है। छोटे से छोटा दस्तकार हो या बड़े से बड़ा कारखानेदार, वह अपनी वस्तु के मूल्य को खुद निर्धारित करता है। इसके विपरीत, बड़े से बड़े किसान की उपज का विपणन मण्डी में नीलामी से ही होता है। उसकी उपज की ढेरियां लगा दी जाती हैं, और खरीददार तथा बिचौलिये नीलामी में बोली देकर खरीदते हैं। किसान की इससे बड़ी विवशता क्या हो सकती है कि अपनी ही उपज अपनी ही नज़रों के सामने लुटती देखकर वह कुछ नहीं कर सकता। फल और सब्जी जैसी फसलों में तो उसकी विवशता और उसके शोषण की सम्भावनायें और भी बढ़ जाती हैं। वह उपज को न ही रख सकता है क्योंकि यह ज्यादा खराब हो जाती है, और न ही उसे कहीं और ले जा सकता है। अत: मजबूरी से उसे वही दाम लेना पड़ता है जो इसे नीलामी से मिले, वह फर्जी ही क्यों न हो।

अत: कृषकों के लिए जहां ऋण सुविधाओं का अधिक विस्तार करके उनकी उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है, वहां सहकारिता द्वारा उनकी उपज का विपणन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सहकारी विपणन व्यवस्था के बिना उत्पादन बढ़ाने के लाभ भले ही बिचौलिए उठा लें, व्यावसायिक लाभ नहीं उठा सकता।

हिमाचल प्रदेश एक पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण जलवायु में भिन्नता पाई जाती है, जिसके कारण यहां लगभग हर प्रकार की फसलों को उगाया जा सकता है। प्रदेश की जलवायु उपयुक्त जलवायु एवं भौगोलिक अनुकूलता के कारण यहां बीज आलू, अदरक, सेब, चिलगोज़ा, चिकोरी, कुठ, हॉप्स, बेमौसमी सब्जियां, किन्नू, गलगल, निम्बू तथा अन्य फल की ऐसी फसले हैं जिनका विपणन सहकारिताओं के माध्यम से किया जा सकता है। अत: प्रयोजनार्थ स्थापित सभाओं द्वारा यद्यपि इस दिशा में पग उठाये जाते भी रहे परन्तु उपलब्धियां सन्तोषजनक रही। इस समय सफल उदाहरण किसी सभा का दिया जाए तो यह *लाहुल बीज आलू उत्पादक सहकारी सभा* का ही होगा। इस सभा ने कठिन एवं दूर्गामी लाहुल ज़िला के क्षेत्र में बसे कृषकों की कठिनाईयों को समझा तथा उन द्वारा उत्पादित आलू की विपणन योग्य पैदावार को न केवल अच्छा मूल्य दिलाने में सहायता दी है, परन्तु पैदावार की बाह्य मण्डियों में अच्छी साख बनाकर एक उदाहरण स्थापित किया है।

इस सभा ने जहां लोगों की आर्थिक

स्थिति में सुधार लाया है वहां कृषक सदस्यों के विश्वास, निष्ठा और सद्भावना को भी बनाये रखा है। इस क्षेत्र में जहां तक कि आलू की उपज का सम्बन्ध है, शोषक वर्ग को दूर रख कर एक अनुकरणीय उदाहरण इस सभा द्वारा प्रस्तुत किया है।

सहकारी विपणन सम्बन्धी एक विशेष समस्या मण्डी स्थान पर भण्डारण व्यवस्था का अभाव रहा है, जिसके कारण कृषक अपने माल को शीघ्र बेचने के लिए किसी भी विक्रेता को अनुचित दर पर विवश हो जाता है। आलू तथा सेब के विपणन के प्रदेश में शिमला की एक विशेष मण्डी है जहां माल के भण्डारण की व्यवस्था न होने के कारण आढ़तियों द्वारा मनचाहे दाम कृषकों को उनकी विवश्ता देखते हुए दिये जाते है। इस दिशा में यह उचित होगा कि किसी विपणन सहकारी सभा के पास अन्य आवश्यक वस्तुओं की तुलना में भण्डारण व्यवस्था का मण्डी स्तर पर उचित प्रबन्ध ा हो। इस प्रति मण्डी समिति तथा राज्य सरकार का सहयोग कृषकों के हित को ध्यान में रखते हुए आवश्क जान पड़ता है। कृषकों को यह जानकारी देने के लिए उनकी पैदावार का मण्डी की प्रथा तथा मूल्य की दृष्टि से किस प्रकार के प्रभावीकरण, श्रेणीकरण की आवश्यकता है। सेब, आलू तथा सब्जियों की गुणवत्ता को भी वह जान नहीं पाते। इस प्रति फसल तैयार होते समय विपणन सहकारिताओं के माध्यम से क्षेत्र के केन्द्रीय स्थान पर और नहीं तो एक दिवसीय शिवरों का आयोजन किया जाना उचित समझा जाता है, ताकिं कृषक निर्धारित प्रमाण तथा श्रेणी अनुसार अपनी पैदावार को अपने घर में ही बोरी बन्द करके मण्डी में ला सके। विपणन सहकारिताओं द्वारा, विपणन योग्य पैदावार को ध्यान में रखते हुए विपणन सम्बन्धी अनुशिगिक व्ययों को पूरा करने के लिए कृषकों को जहां तक भी हो सके नकदी तथा वस्तु के रूप में अग्रिम धन राशी उपलब्ध कराई जाए। इससे एक तो उत्पादक विपणन सभा के स्थान पर अपनी उपज को लाने के लिए बाध्य हो जाएगा दूसरे उसे मण्डी के निजी आढ़तियों एवं बिचौलियों के चंगुल से छुटकारा मिल सकेगा।

उपरोक्त विशेषता तथा अन्य विपणन सम्बन्धि विषमताओं का निराकरण करने की दिशा में एक सुव्यवस्थित सहकारी विपणन प्रणाली हो, वर्तमान परिस्थियों के दृष्टिगत उचित जान पड़ती है। बशर्ते की उत्पादक विपणन सभा, विभागीय कार्यकर्ता, राज्य शासन, आपसी सम्पर्क तथा सहयोग की भावना से प्रेरित होकर काम करें। प्रदेश से बाहर खप्त मण्डियों में स्थापित वहां की विपणन सहकारीताओं से निरन्तर सम्पर्क स्थापित किए जाने की आवश्यकता है प्रतिदिन मण्डी दरों का रेडियो तथा दूरदर्शन के माध्यम से, प्रसारण, मण्डीयों में विचौलियों के वैधानिक अंकुश निरन्तरित मण्डीयों की स्थापना, इत्यादि भी कुछ ऐसे आवश्यक पहलू है जिन पर विचार किया जाना एक सुव्यवस्थित विपणन प्रणाली के हित में होगा, तथा उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को संरक्षण प्रदान किया जा सकेगा। वर्तमान में सहकारी आन्दोलन के लिए नई चुनौतियों और नये अवसर भी है। नई चुनौतियों को स्वीकार कर ऐसे सहकारी प्रयास किए जाएं जिन से बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय पूर्ण रूपेण हो सके। गरीबी हटाने को हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता मिलती रहनी चाहिए। प्रगति के लाभ जन साधारण तक पहुंचे। यह सुनिश्चित करने के करने के लिए हमें उपाय और साधन ढूंढने होगें इन उक्तियों को सार्थक बनाने के लिए नई कृषि नीति उपयुक्त है। कृषि में सहकारिता का समावेश प्रभावी होगा और सहकारिता से ग्रामिण विकास के सारे सपने साकार होगें। इन्द्र धनुषी सहकारी झण्डे से सप्त रंग चहुमूखी विकास में सहभागी बनेंगे। नई कृषि नीति और सहकारीता इन सबके लिए आधार स्तम्भ होगी।

Marketing is analysis organising, planning and controlling of the firms customer-impinging resources, policies, activities with a view to satisfying the needs and wants of chosen customer groups at a profit. Marketing is the creation and delivery of a standard of living.

मुकम्मल पहाड़ .... पृष्ठ 9 का शेष

अपना प्रयास दुस्साहसपूर्ण लगा। पूछने पर गुरु जी बताते हैं कि वे स्वान्त:सुखाय ही *पेंटिग* करते हैं। 'गुरू जी आप *पोट्रेट* पर क्यों नहीं *कॉन्संट्रेट* करते? आप के पोट्रेट तो लाजवाब हैं!'

'नहीं, अब तो मै पहाड़ बनाऊंगा।' उनके वक्तव्य में ज़िद है। 'क्यों?'

'नहीं, *(गुरु जी हर बात "नहीं" से शुरू करते हैं)* अब उम्र का तकाज़ा है। *पोट्रेट* का बारीक काम है। आंखें साथ नहीं देती। और फिर *लैंडस्केप* में आनंन्द मिलता है।'

यह जवाब गुरु जी को सहसा एक और पहाड़ के पीछे ठेल देता है, चुपके से .... मुझे नि:शब्द, अकेला और हत्प्रभ उन पहाड़ों के बीच खड़ा छोड़। उन के भीतर जो पहाड़ों ही कतार है, उस का पार कर पाना लगभग असंभव है।

गुरु जी दीर्घायु हों! यह कामना इस निजी स्वार्थ के साथ कि उनका बनाया वह अन्तिम पहाड़, वह 'मुकम्मल पहाड़' मै देख सकूं अपनी इन्हीं आंखों से, इसी धरती पर, इसी बार। *अगस्त, 1997*

अलड़ा राक्षस

-सोनम, फुकतल

लाहुल घाटी में बहुत सी लोक कथाएं घर-घर में प्रचलित हैं। अभी भी हम अपने बड़े बुर्जुगों से इन कथाओं को सुन सकते हैं। इन में जहां हमारे प्राचीन देवी-देवताओं की गाथाएं है, वहीं राक्षसों व भूत प्रेतों की कथाएं भी प्रचलित है। ऐसी ही एक गाथा उदयपुर उपमण्डल में स्थित एक गांव के बारे में प्रचलित है। यह गांव उदयपुर से लगभग दो कि०मी० दूर नदी के किनारे स्थित है।

बहुत समय पहले जब इस स्थान पर एक ही घर था, उस घर में पति-पत्नी अपने छोटे से बच्चे के साथ रहते थे। जब सर्दियां शुरू हुई पत्नी बच्चे के साथ घर में अकेली रह गई क्योंकि उस का पति सर्दियों में कुल्लू गया था, जैसे उस समय लाहुल के बहुत से लोग किसी काम की तलाश में कुल्लू चले जाते थे। घर में औरतें व बच्चे ही रह जाते थे।

एक दिन उस औरत को जब बहुत डर लगा तो उसने नदी के पार बसे एक अन्य गांव की तरफ आवाज़ दी। गांव से लोगों ने पूछा कि कौन *'साति'* आए, तो उस ने कहा कि *'अरला'* यानि कोई भी आ जाओ। उस आवाज़ को नदी के पार नाले के एक राक्षस जिस का नाम अड़ला राक्षस था, उस ने सुन ली और वह पीठ में एक किल्टा ले कर उस ओरत को 'साति' चल पड़ा। कहा जाता है कि उस ने किल्टे में नदी किनारे के पत्थर डाले हुए थे।

जब वह आया तो उस औरत को लगा कि उस का पति आया है क्यों कि उस ने अपना रूप बदल दिया था। परन्तु जब उस के पैरों पर उस औरत की नज़र पड़ी तो यह समझ गई कि यह तो राक्षस है, जो उस के पति का रूप धारण कर के आया है। परन्तु वह यही दर्शाती रही कि उसे राक्षस के असलियत का पता नहीं लगा है। शाम के समय उसने बच्चे को नहलाया व उसे राक्षस की गोद में दे दिया। बच्चा अभी बहुत छोटा था व उसका मुण्डन संस्कार नहीं हुआ था। उस औरत को इतना पता था कि जिसका *'सेकरा'* काटा न हो उसे राक्षस कुछ नहीं कर सकता था। जिस (रेन्ड्र) टब में बच्चे को नहलाया था उसे जब वह बाहर ले जाने लगी तो राक्षस ने उसे *(छिर)* गाची से बांधकर बाहर भेजा ताकि वह भाग न सके। औरत ने बाहर आकर अपनी जगह *'पन'* (लकड़ी की सीढ़ी) को छिर से बांध दिया और स्वयं दूसरे गांव की ओर चली गई। जब राक्षस ने अपने छिर को खींचा तो उसे लगा कि वह औरत अभी यहीं है। वह काफी देर तक वैसे ही बैठा रहा। वह बच्चे को तो खा नहीं सकता था। वह बच्चे को गोद में लेकर बैठा रहा। उसने कहा, *'ओ लो लो पुत्तुरा कां चोंज़रांग बेवातग भात क गे ज़रिग का'।* (तुम्हारे बालों की चोटी से डरता हूं नहीं तो मै तुम्हे खा जाता)।

तब तक औरत दूसरे गांव में जा कर लोगों को इक्टठा कर ले आई। उन्होंने देखा कि अन्दर *'डाठा'* (अनाज रखने का संदूक) से राक्षस ने सारा अनाज निकाला व उस का एक ही रोट (रोटी) बना लिया था। अब सब गांव वालों ने मिलकर राक्षस को मार डाला और उसकी अंतड़ियां बाहर निकाल ली। इस गांव में आज भी उस राक्षस के कलेजे व अंतड़ियों को देखा जा सकता है जो बड़े आकार के पत्थरों में बदल गए हैं। इन का आकार अंतड़ियों की

शेष पृष्ठ 25 पर ....

लाहुल-स्पीति लोककला, साहित्य, संस्कृति संरक्षण फण्ड

जैसा कि सभी को विदित है कि "स्वंगला एरतोग", लाहुल स्पीति की कला, साहित्य व संस्कृति के उत्थान हेतु एक रजिस्टर्ड सोसाईटी है। जो सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट, 21, 1860 के अन्तर्गत रजि० संख्या ल स/42/93 ज़िला मुख्यालय केलंग में पंजीकृत है। आप सभी जानते है कि ये लाभ रहित व स्वैच्छिक संस्था है और लाहुल स्पीति की लुप्त हो रही लोक कला, साहित्य व संस्कृति के संरक्षण और उसे पुनर्जीवित करने में लगी है, इस पुनीत कार्य में समाज के सभी लोगों से निवेदन है कि यथाशक्ति अपना योगदान दें। हर अंक में हम लाहुल स्पीति लोक कला, साहित्य व संस्कृति संरक्षण फण्ड के तहत सभी दानी सज्जनों का नाम, दान और जमा खर्चे का लेखा जोखा देते हैं।

क्र०	नाम	राशि
1.	श्री टाशी दोरजे गांव ठोलंग, लाहुल	1,000.00
2.	श्री अजेय कुमार गांव सुमनम, लाहुल	500.00
3.	श्री शिव दास, उदयपुर	500.00
4.	पूर्व एकत्र	2,800.00
	कुल योग	4,800.00

अध्यक्ष, फण्ड कमेटी,
लाहुल स्पीति लोक कला,
साहित्य व संस्कृति संरक्षण फण्ड,
पोस्ट बॉक्स नं० 25,
मुख्य डाक घर, ढालपुर,
कुल्लू 175 101

कर्म और भाग्य

-वी. के. अंगमो

आज संसार में लोग हर बात में भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराते हैं। कोई गरीब है तो वह अपने भाग्य को दोष देता है, कोई परीक्षा में फेल हो जाए तो भी अपने भाग्य को दोष देता है। किसी दुर्घटना में किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाती है तो भी हम अपने भाग्य को दोष देते हैं। यहां तक कि किसी की कोई साधारण सी इच्छा भी पूरी नहीं होती तो वह अपने भाग्य को ही कोसता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि लोग बात-बात में अपने भाग्य को क्यों कोसते रहते हैं या अपने कर्म फल का उत्तरदायी भगवान को क्यों ठहराते हैं? आज किसी को कुछ हो गया तो कहते हैं - *'हे भगवान, यह तुमने क्या कर दिया?'* कोई मर गया तो कहते हैं - *'भगवान आपने ऐसा क्यों किया?'*

लोग गलतियां तथा पाप खुद करते हैं तथा जब उसका फल भुगतना पड़ता है तो सारा दोष भगवान के सिर पर थोप देते हैं। क्या भगवान ही सब को दु:ख देने वाला है?

बाज़ार में लाटरी की टिकट बेचने वाला हांक लगाता रहता है कि *'एक रुपये में भाग्य आज़मा लो। एक रुपये में लखपति बनो।'* प्रश्न यह उठता है कि भाग्य क्या है? भाग्य कुछ और नहीं बल्कि अपने किये गये कर्मों का फल है। जिस प्रकार एक विद्यार्थी परिश्रम करता है तो परीक्षा में उसके अच्छे नम्बर आते हैं। उसे अच्छी नौकरी या अच्छा व्यवसाय मिलता है, हर क्षेत्र में योग्यता प्राप्त करता है। अच्छी आय होती है, तो इन सारी बातों का आधार उसका कर्म है, न कि भाग्य।

यदि एक किसान अच्छा परिश्रम करता है तो फसल अच्छी होती है। अगर हम नीम का पेड़ लगायें तो उससे नीम का ही फल निकलेगा, आम का नहीं। इसी प्रकार, यदि हम अच्छे कर्म करें तो बुरा फल कैसे मिलेगा? जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे। लेकिन कभी-कभी अच्छा कर्म करने पर भी उसका फल विपरीत होता है। किसी की भलाई करने पर हमें यश के बजाय अपयश ही

> भाग्य और कुछ नहीं बल्कि अपने किए गये कर्मों का फल है। भूतकाल के कर्मों का फल वर्तमान है और वर्तमान के कर्मों का फल भविष्य का भाग्य है।

मिलता है। कोई किसान बहुत परिश्रम करता है, फिर भी किसी प्राकृतिक आपदा आदि के कारण फसल नष्ट हो जाती है। किसी का कोई सम्बन्धी अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है तो हम उसे उसका दुर्भाग्य समझते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि संसार में कोई भी घटना बिना किसी कारण के घटित नहीं होती, कार्य - कारण का बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसलिए हमें हर फल के पीछे किसी कारण की तलाश करनी चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार हर पेड़ के फल का कोई न कोई बीज ज़रूर होता है, उसी प्रकार कर्मफल के पीछे कर्म ज़रूर होता है। लकिन मानव अपनी छोटी बुद्धि से उस कारण को नहीं जान पाता और भाग्य को तथा भगवान को दोष देकर अपने मन की भड़ास निकालता है। मानव को चाहिए कि किसी कार्य में असफल होने पर असफलता के पीछे कारण की सूक्ष्मता से निरीक्षण करें। जिस प्रकार कोई योजना असफल हो जाती है तो सरकार की ओर से जांच आयोग बिठाए जाते हैं तथा उस कार्य की असफलता तथा दुर्घटना के कारणों का पता लगाया जाता है, तथा ऐसी व्यवस्था की जाती है ताकि भविष्य में वैसी गलती न हो। उसी प्रकार हर मनुष्य को अपने कार्य की असफलता के कारण का पता लगाना चाहिए और आगे के लिए आवश्यक सुधार करना चाहिए।

भाग्य और कुछ नही बल्कि अपने किए गये कर्मों का फल है। भूतकाल के कर्मों का फल वर्तमान है और वर्तमान के कर्मों का फल भविष्य का भाग्य है। मनुष्य को चाहिए कि वह भाग्य और कर्मों के सम्बन्ध को जानकर सदा अच्छे कर्म करें जिससे उसका फल भी अच्छा हो। हर व्यक्ति अपने किए पापों का, विकर्मों का, गलतियों का, पता लगाएं और उसे सुधारने का प्रयास करें। गलतियों और पापों का सही प्रायश्चित ही पुण्य का द्वार है।

अड़ला राक्षस... *पृष्ठ 24 का शेष*

तरह ही है। यहां के लोगों ने राक्षस को मारने के बाद एक *प्रेनाड़े* (बौड़ी) में जाकर अपना हाथ मुंह धोया व उस राक्षस के बनाए हुए रोट को खाया। तभी से कहा जाता है कि यहां के लोग बहुत हट्टे-कट्टे व ताकतवर होते हैं।

इस तरह हमें इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि मुसीबत में हमें घबराना नहीं चाहिए। सामने अगर मौत भी खड़ी हो तो दिमाग से काम ले कर हम मौत को भी टाल सकते हैं।

गोन्धला क्षेत्र - धर्म एवं रहन-सहन

-सुनीता मनेपा, गोन्धला

हिमाचल के आंचल में कई हिमाछान्दित पर्वतीय प्रदेश बसे हुए है। इन पर्वतीय प्रदेशों में रहने वाले लोगों के जीवन यापन का अपना अलग ही मापदंड है। समुन्द्र तल से 13,050 फुट ऊंचाई पर स्थित रोहतांग बहुत ही आकर्षक एवं शीतल पर्वतीय स्थल है।

रोहतांग से लाहुल एवं स्पीति के ऊंचे-ऊंचे पहाड़ ऐसे लगते है मानो पर्यटकों के स्वागत हेतु खड़े हों। इन पर्वतों से घिरी हुई लाहुल और स्पीति की घाटियां है।

रोहतांग दर्रे से सात या आठ कि०मी० का रास्ता उतर कर ग्रम्फू नाम एक स्थान आता है, जहां से लाहुल और स्पीति के लिए रास्ते अलग हो जाते है। स्पीति का रास्ता कच्चा है जबकि लाहुल के लिए जाने वाली सड़क पक्की है। ग्रम्फू से 4 कि०मी० आगे चल कर लाहुल का पहला गांव कोकसर आता है, जो चन्द्रा नदी के पार इसके किनारे पर स्थित है। इस प्रकार चन्द्रा घाटी के गांव चन्द्रा नदी के किनारे बसे हुए है। कोकसर कोठी की संस्कृति, रीति-रिवाज पर कभी कुल्लू की संस्कृति रीति-रिवाज का गहरा प्रभाव पड़ा लगता है, क्योंकि यहां के प्राचीन लोक-नृत्य, रीति-रिवाज और वेश-भूषा और कुल्लू के लोक नृत्य और वेश-भूषा में समानता थी। अब यह बात यहां नहीं मिलती है और यहां की संस्कृति पर बौद्ध धर्म का प्रभाव नज़र आता है।

सिस्सू का वर्णन

रापसांग नाला से लेकर दालंग गांव और आगे लाथर नाला तक कई गांव गुधंला कोठी में प्राचीन काल से ही सम्मिलित थे, क्योंकि गोन्धला कोठी के लोगों की संस्कृति, वेश भूषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन और बोली में एकरूपता है, ऐसा लगता है कि ये सभी गांव एक परिवार के सदस्य हों।

गोन्धला शब्द की उत्पत्ति भोट भाषा से हुई लगती है, जिसका प्राचीन नाम *'गुला'* जिसका अर्थ है नौ देवताओं कीं भूमि (*गू* = नौ *लह* = देवते)। किंवदन्ती है कि इस जगह पर सर्वप्रथम नौ मनुष्य बाहर से आकर के रहने लगे थे, जो वास्तव में सिद्ध पुरुष थे। उन्होने यहां एक गांव बसाया। इनके प्रति लोगों में इतना आदर भाव था, वे इन्हें देवता मानने लगे थे। इन नौ सिद्ध पुरुषों के स्वर्ग सिधारने के बाद लोगों ने इनकी प्रतिमा बनाकर देवताओं का रूप दे दिया। उनमें जो सबसे बूढ़ा व्यक्ति था, उसका नाम 'मिलांग तेते' था, जो अभी भी गोन्धला का देवता है। इस तरह गांव की जनसंख्या बढती गई और लोग टोलियां बनाकर गोन्धला कोठी के और कई क्षेत्रों में बसते चले गये और वे साथ-साथ इन नौ देवताओं की प्रतिमाओं को अपने साथ ले जाने लगे। ये नौ देवता अब भी गोन्धला कोठी के विभिन्न गांव में मौजूद है और लोग बड़ी श्रद्धा से इनकी पूजा करते है। प्राचीन काल में इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोग मनुष्य की बली भी देने लगे थे और समय के गुजरने के साथ-साथ लोग मनुष्य की बलि चढ़ाने से हिचकचाने लग गये थे और कई देवताओं ने मनुष्य की बलि के स्थान पर बकरे की बलि लेना स्वीकार किया। उनमें गांव तोद खांगसर का एक देवता 'तांगजर' नामक था, जिसने बकरे की बलि लेना अस्वीकार किया। ऐसा कहा जाता है कि एक दिन एक बूढ़ी के लड़के की बारी आई। मगर वह का इकलौता बेटा था। उस लड़के की बारी समीप थी। देवता उस लड़के की बलि के लिए हठ कर रहा था। मगर गांव वालों के बार-बार बकरे की बलि के लिए प्रार्थना करने के बावजूद देवता नहीं माना। गांव वालों ने उस देवते की प्रतिमा को नदी में फेंक दिया और वह देवता चन्द्रा नदी में तैरते हुए भागा नदी से होते हुए भागा घाटी में पहुंच गया। वहां गांव वालों ने उनका आदर किया और अपना देवता इस शर्त पर मान लिया कि वह मनुष्य की बलि नही लेगा। तब से लेकर मानव सुखी एवं नया जीवन बिताने लगे।

दूसरा गोन्धला शब्द एक तिब्बती विद्वान गंधला नाम से पड़ा भोट भाषा में उन्हें *ड्रिलवूपा* के नाम से याद किया जाता है। गोन्धला से उत्तर की ओर एक पर्वत पर है, उसे ड्रिलवूरी कहते है। अक्सर ड्रिलवूपा ड्रिलवूरी में रहा करते थे। वह हर समय समाधि लीन रहते थे।

इस प्रकार गोन्धला शब्द *गंधला* शब्द से पड़ा। मगर वह किस काल और कौन सी शताब्दी में रहे अभी तक जानकारी प्राप्त नहीं हुई। इस ड्रिलवूरी पर्वत पर लोग हर साल परिक्रमा करते है। पूजा करते है और शुभ कामनाओं की इच्छा करते है। कई लोग दण्डवत प्रणाम करके ड्रिलवूरी नामक पर्वत की परिक्रमा करके अपने परलोक को सुधारने की कामना भी करते है। इसी पुण्य पर्वत पर कई योगी साधना में लीन रहे, मगर आज तक इस पुण्य पर्वत पर किसी प्रकार की अप्रिय घटना नहीं घटी।

यह तो सर्वविदित है कि लाहुल स्पीति में बौद्ध धर्म का प्रसार अन्य क्षेत्रों से काफी समय बाद हुआ। हिमालय के दूसरे क्षेत्रों में जैसे लद्दाख, भूटान, सिक्किम तथा नेपाल आदि में भी बौद्ध धर्म का प्रसार तभी हुआ, जब तिब्बत

में इसका प्रसार हो चुका था। कहा जाता है कि तिब्बत के राजा ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य पद्मसम्भव को तिब्बत आने का निमन्त्रण दिया था और उन्हे साथ ले जाने के लिए अपने दरबार के कुछ गणमान्य व्यक्तियों को भेजा था। अचार्य पद्मसम्भव ने सहर्ष निमन्त्रण स्वीकार किया और इनके साथ तिब्बत रवाना हो गए। कई साल तक तिब्बत के राजा के पास ल्हासा में रहने के बाद वह तिब्बती अथवा भोटी भाषा में पारंगत हो गये थे, और उन्होने बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का भोटी भाषा में अनुवाद करवाया।

इस प्रकार हम कह सकते है कि तिब्बत में जो बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ उनका मूल सिद्धान्त तो बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ के सिद्धान्त ही माने जाते है, जो इस समय पाली व संस्कृत भाषा में उपलब्ध है।

यह विचित्र बात है कि हजारों साल पहले बौद्ध धर्म का प्रसार भारत के उत्तरी क्षेत्रों में हो चुका था मगर इन हिमालयी क्षेत्र, जिसका वर्णन ऊपर आया है, जिसमें लाहुल स्पीति का क्षेत्र भी शामिल है, इस धर्म से अछूता रह गया। मैं समझती हूं कि हिमाचल के इन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म का प्रसार होने में भोटी भाषा का बहुत बड़ा हाथ था। गुरु पद्मासम्भव तिब्बत के ही बन कर रह गए और उन्होंने तिब्बत के धर्मोपदेशक के रूप में हिमालय के क्षेत्रों का भ्रमण करना शुरू किया। वह जहां भी गए, लोगों ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और बौद्ध धर्म अपना लिया। यह कहना कठिन है कि उन्होंने केवल बौद्ध धर्म का ही प्रचार किया हो। ऐसा लगता है कि तिब्बत में उनके प्रारम्भिक समय में तिब्बत के लोगों के मन में अपनी धाक जमाने के लिए और धर्म में प्रति आस्था रखवाने के लिए कुछ तन्त्र विद्या का सहारा लिया हो। गुरु पद्मासम्भव को एक सिद्ध पुरुष और गुरु रिनपोछे के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है और लाहुल-स्पीति के बौद्ध गोम्पाओं में महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के साथ गुरु पद्मासम्भव की प्रतिमा भी आसीन है।

लाहुल क्षेत्र मे विभिन्न गांव में बौद्ध धर्म के विषय में विस्तृत सामग्री मिलती है। प्रत्येक गांव में छोटे-बड़े आकार के बौद्ध बिहार अवश्य बना होता है। इन बौद्ध विहारों को भोटी में गोम्पा कहते हैं। इन गोम्पाओं में बौद्ध पुरोहित लामा होता है। कारदंग गोम्पा, शाशूर गोम्पा, गेमूर, और मने गोम्पा लाहुल के प्रसिद्ध गोम्पा माने जाते है। इन गोम्पाओं की विशेषता यह है कि प्रत्येक गोम्पा के आन्तरिक भाग में एक कमरा होता है जिसे *छोसखङ* कहते है, जहां बौद्ध धर्मों की प्राचीन ग्रंथों की पाण्डुलिपियां रखे जाते है। इन गोम्पाओं में बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणी रहते है।

गोम्पा के आन्तरिक भाग (छोसखङ) में बड़े-बड़े सीधे खड़े ढोल-नुमा वस्तु रखी जाती है, जिसे भोटी भाषा में *'मने'* कहते है, जिसके अन्दर *ॐ मने पदमे हूं* कागज़ों पर लिख कर भर दिए जाते है। लोग इस मने को बाएं से दाएं की ओर घुमा कर और इसी श्लोक का उच्चारण करते है। प्रत्येक गोम्पा में बारह ऐसे ग्रन्थ होते है जिसे भोटी भाषा में *'युम'* कहते है। बौद्ध लामा पूजा पाठ के लिए वाद्य यन्त्रों का प्रयोग भी करते है। इन में मुख्य है *ङ* = ढोल, रोलमा, थाली बजाने वाला यन्त्र। *दोर्जे* = बज्र, *ड्रिलू* - घण्टी, *ज्ञदलिंग* = आठ स्वरों वाली शहनाई आदि प्रमुख है।

गोन्धला कोठी में पांच बौद्ध मन्दिर अस्तित्व में थे, जिनमें प्रमुख सीला गोम्पा, गूला, मने, (मनिंग) पूरद और खीनंग गोम्पा, जिनमें से दो इस समय खण्डहर में बदले हुए है। मनिंग गोम्पा के इतिहास की किसी को जानकारी नही है। गोम्पा बहुत ही पुराना लगता है। गोम्पा के आन्तरिक भाग छोसखङ में लिखी गई भाषा एक पहेली बन गई है। इस समय कम से कम गोन्धला कोठी में कोई ऐसा वृद्ध व्यक्ति नही है जो इस भाषा को पढ़े। गोम्पा के आन्तरिक भाग की चारों दीवारें भित्ति चित्रों से भरी हुई है। इन चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हम भारत के अजन्ता और एलोरा के भित्ति चित्र देख रहे हों। गोम्पे में बारह पोथियां भी रखी हुई है। गोन्धला के लोग लामाओं से इनका पाठ करवाते है। गोम्पा में महात्मा बुद्ध की मुर्ति के अतिरिक्त गुरु पदमासम्भव, तारा देवी, मंजुश्री आदि कई और गुरुओं की मूर्तियां भी रखी हुई है, (इष्ट देव) ज्ञायपो की प्रतिमा भी इसी गोम्पे में रखी हुई है।

जुलाई महीने में ग्रीष्मोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। वृद्ध पुरुष, बच्चे और औरतें रंग-बिरंगें पारम्परिक वेष-भूषा पहन कर उत्सव की शोभा बढ़ाते हैं। इस उत्सव की विशेषता यह है कि लामा अजीब और भयानक मुखौटे और पोशाक पहन कर नृत्य करते है। उत्सव के पहले दिन लामा गोम्पा में इक्टठे होते है और अगले दिन के लिए पूजा पाठ के लिए विभिन्न सामग्री जुटाते है, और शाम को नृत्य का पूर्वाभ्यास करते है। तीसरे दिन सुबह से ही लोग इस नृत्य को देखने के लिए अपनी अपनी जगह ग्रहण कर लेते हैं। गोम्पा के आंगन में यह नृत्य होता है। इस के चारों ओर स्थान दर्शकों से खचाखच भरा होता है। उत्सव की शुरुआत थान्का गोन्बो की पूजा पाठ से होती है। बड़े आदर से और वाद्य यन्त्र बजा कर मन्त्रोच्चारण के साथ गोम्पा

के आन्तरिक भाग, 'छोसखंड' से थन्कागोन्बो की शोभा यात्रा निकलती है और गोम्पा के आंगन में पहुंचते ही आंगन के किनारे दीवार पर थन्का स्थापित किया जाता है। कहा जाता है कि इस नृत्य का आयोजन गोम्बो नामक एक सिद्ध पुरुष की याद में किया जाता है। थन्का की स्थापना के तुरन्त बाद नृत्य आरम्भ हो जाता है और लगातार तीन घंटे तक जन्म मरण की झलकियां इस नृत्य द्वारा की जाती है। नर्तकों की स्फूर्ति और हाव-भाव देखते ही बनती है।

इस गोम्पा के संस्थापक ठाकुर ज्ञान चन्द और रूप चन्द माने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ठाकुर काफी धन दौलत वाला एवं बौद्ध धर्म को मानने वाला था। उन्होने गोम्पा के साथ-साथ एक प्रसिद्ध नौ मंजिला किला भी बनवाया जो इस समय भी मौजूद है। ऐसा कहा जाता है कि यह किला एक ही कारीगर द्वारा बनाया गया था बाद में इस किला ने ठाकुर के बौद्ध गोम्पा का स्थान ले लिया था।

सीला गोम्पा

सीला गोम्पा सीला पर्वत के ऊपर और ड्रिलबूरी पर्वत के आंचल में स्थित है। सीला गोम्पा क्षेत्र दूर से देखने में ऐसा लगता है कि यह क्षेत्र मिट्टी और पत्थर की भूमि न होकर एक शंख हो और गोम्पा इस शंख के ऊपर स्थित प्रतीत होता है और स्वत: ही मन में इस क्षेत्र के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता है। सीला गोम्पा समाधि स्थल है जहां बड़े बड़े सिद्ध पुरुषों ने तप किया और इसे पवित्र बनाया। लोगों का कहना है सर्वप्रथम तिब्बत के महान विद्वान गोजंगपा ने इसे अपना ध्यान स्थल बनाया था। एक बार समाधि में लीन इस सिद्ध की समाधि भंग हुई तो देखा चार किलोमीटर दूर ठाकुर के नौ मंजिले किले की चोटी पर से ठाकुराईन के हाथ से बर्फ फेंकने वाला लकड़ी का बेलचा नीचे गिर गया और उसने अपने मनोयोग से किले की चोटी से ही बेलचा उठा लिया। यह देखकर गोजंगपा मनोयोग से पक्षी बनकर ठाकुराईन का मुकाबला करने के लिए उड़े, परन्तु ठाकुराईन, जोकि गोजंगपा के मनशा से वाकिफ थी, उस से पहले ही पक्षी बनकर उड़ गई थी। दोनो उड़ते-उड़ते कारदन्ग गोम्पा के पास आसमान में भिड़कर धरती पर गिर गये और पत्थर बन गये। इन पत्थरों को इस समय भी देखा जा सकता है।

खीनंग गोम्पा

तीसरा गोम्पा खिनंग गांव से ऊपर स्थित है। यह भी एक पवित्र और प्रसिद्ध बौद्ध गोम्पा है। ड्रिलबूरी की परिक्रमा करने वाले तीर्थ यात्री जब चढ़ाई समाप्त करके उतरते है तो सर्वप्रथम खीनंग गोम्पा का दर्शन करते है। ऐसा कहा जाता है कि जब गुरु पदमासम्भव भ्रमण करते हुए गोन्धला में पहुंचे जो गोन्धला गांव के ठीक सामने चन्द्रा नदी के पार नंगल की गुफा को अपना ध्यान स्थल बनाया। नंगल विशाल पर्वत श्रेणियों से घिरा हिमखण्ड स्थल है, जहां के शान्त वातावरण को देख कर लगता है निश्चय ही उन्होनें उसे अपना ध्यानस्थल बनवाया होगा।

लाहुल में रीति-रिवाज, वेश- भूषा, रहन-सहन अलग-अलग प्रकार के नहीं हैं। मगर बोली में विभिन्नता है।

बोली

गोन्धला कोठी की बोली का मूल स्रोत का पता नहीं चलता है कि किस स्थान की बोली-विशेष से यह मिलती है, मगर यहां की बोली में भोटी भाषा के कई शब्दों का समावेश हुआ है। जैसे *'छांग'* - पेय, *'सीङ'* मूल भोटी भाषा में *'शीङ'* से बिगड़ कर बना है जिसका अर्थ है जलाने की लकड़ी। उसी प्रकार *'मी'* - आदमी, *'समपा'* मूल भोटी भाषा *'चम्पा'* का बिगड़ा रूप है। *याग - याक* इत्यादि कई शब्दों का चन्द्रा घाटी की लोगों की बोली में समावेश हुआ है। ऐसे कई शब्द सम्पूर्ण चन्द्रा घाटी जिसमें तीन कोठी यानि कि गोन्धला कोठी, सीसू कोठी और कोकसर कोठी की बोलियों में मिलते हैं। इससे ऐसा लगता है कि इस घाटी में बौद्ध धर्म की प्रसार से पहले भोटी भाषा का ज्ञान लोगों में कुछ हद तक हो गया था और बौद्ध धर्म के प्रसार में इस बोली का बड़ा हाथ रहा है। कोकसर कोठी की लगभग 50 प्रतिशत बोली भोट भाषा से मिलती है।

रहन-सहन

लगभग सभी बौद्ध समाज में उठने बैठने और रहन सहन का एक जैसा रिवाज है। प्रत्येक घर में वयोवृद्ध व्यक्ति का स्थान सब से ऊपर होता है। और उस के बाद वय और सामाजिक स्तर जैसे बौद्ध लामा होने के कारण उसका उठने बैठने की जगह क्रमबद्ध होती है। घर के एक कमरे में वय के अनुसार क्रमवार लोग अपना स्थान ग्रहण करते है और खाने पीने की वस्तुएं भी क्रमवार परोसी जाती है, बूढ़ों का विशेष आदर होता है। किसी बुजुर्ग को कोई पेय या खाने के लिए 'दोन ले' या सादर ग्रहण करें शब्दों के प्रयोग के साथ दायें हाथ की हथेली खोल कर वृद्ध या आदरणीय व्यक्ति से आदर से पीने या खाने का इशारा किया जाता है। यह रिवाज सभी बौद्ध समाज जिसमें तिब्बत भी शामिल है, प्रचलित है। इससे ऐसा लगता है कि रीति रिवाज का एक जैसा प्रचलन भी लाहुल में बौद्ध धर्म प्रसार में सहायक रहा है।

वेश-भूषा

सभी बौद्ध समाज में मनुष्य ढीले वस्त्र पहनते हैं। यहां के मर्द प्राचीन काल में चोला और औरतें चोलू (चोड्) पहनते थे। सर्दी गर्मी में ऊनी वस्त्र ही पहनते थे। इन वस्त्रों में तनिक बदलाव को नज़र अन्दाज करें तो इन की बनावट और पहनने के ढंग में एकरूपता नजर आती है। बौद्ध समाज की औरतें मूंगा मोती के अतिरिक्त चांदी और सोने के गहने पहनती हैं। मर्द केवल टोपी लगाते हैं जो कि बौद्ध समाज में एक समान ही है।

परिवार के सदस्य

वयोवृद्ध पुरुष जो कि घर का मालिक होता है, सभी काम उसी के आदेश अनुसार करते हैं। कुछ घरों में औरतें भी घर का मालिक बनती हैं।

नव वर्ष का समारोह

सभी बौद्ध समाज में जनवरी या फरवरी में नव वर्ष का आगमन माना जाता है. जिसे कई नामों जैसे *हालडा कुस* और *कूंह* आदि नामों से नव वर्ष का उत्सव हर्षोल्लास से मनाया जाता है। केलंग, तोद, गोन्धला, सीसू, कोकसर इत्यादि घाटियों में यह उत्सव जनवरी मास में मनाया जाता है।

गोन्धला कोठी मे जनवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह यह उत्सव मनाया जाता है, जिसे *कुस* या *हल्डा* के नाम से पुकारते हैं। हल्डा का अर्थ है 'मशाल'। इस उत्सव के पहले दिन सुबह से ही घर की सफ़ाई, खान पान की तैयारी और दोपहर बाद मशालों की तैयारी हो जाती है। मशाल देवदार की बारीक लकडी से तैयार की जाती हैं। जिस घर में जितने मर्द हों चाहे उस समय घर में हो या घर से बाहर हों, सभी के लिए एक-एक मशाल तैयार की जाती हैं। मशाल बनाने वाले के सामने पहले एक बर्तन 'छांग' पेय जिसके किनारे पर मक्खन के तीन छोटे टुकड़े रखे जाते हैं। जो तीन शुभ अंक का द्योतक है जैसे *'कोन्चोग सुम'* तीन भगवान के रूप ब्रहमा, विष्णु और महेश। बर्तन मशाल बनाने वाले के सामने बड़े आदर के साथ रखा जाता है और एक लड़का जिसके मां बाप जीवित हो, को इष्ट देव को अर्पण करने के लिए देवदार के पत्ते से तीन बार उस पेय को छिड़काने के लिए कहा जाता है। और मशाल बनाने वाला उस समय इष्ट देव का नाम लेकर दूसे की स्वीकृति के लिए प्रार्थना करता है। मशाल बन जाते हैं और उसी रात घर के अन्दर से जला गांव के सभी लोग हंसी खुशी से नाचते-गाते हुए निश्चित स्थान पर ले जाते हैं। उस समय दृश्य बड़ा ही सुहावना होता है। अंधेरी रात में ऐसा लगता है कि आसमान के तारे धरती पर उतर आए हों। दूसरा दिन पूजा पाठ और खान-पान आदि में गुजर जाता है। उस दिन आनन्द और सुख की देवी 'शिकर आपा' की तस्वीर प्रत्येक घर की दीवार में सफेद रंग से बनाई जाती है और इस की पूजा की जाती है। इस तरह यह उत्सव चार दिन लगातार चलता है। चौथे दिन गोन्धला गांव में ठाकुर गोन्धला के घर में गांव वाले इक्कट्ठे होते है और नव वर्ष के शुभ आगमन पर एक दूसरे का फूल देकर चरण वन्दना करते हैं और हंसी-खुशी से खान पान का आयोजन ठाकुर के घर में होता है। इस प्रकार गांव के सभी घरों में बारी-बारी से भोज का आयोजन किया जाता है। यह घड़ी हंसी खुशी में बीत जाती है और हर रोज़ सायं कीर्तन भजन का आयोजन होता है। पहले भगवान बुद्ध की पूजा उसके भजन से होती है। यह क्रम लगभग सभी क्षेत्रों में चलता है जहां यह उत्सव कुस मनाया जाता है। कई उत्सव बौद्ध समाज में सर्दियों में ही मनाया जाता है। इस का एकमात्र कारण यह है कि इस क्षेत्र में साल में एक फसल पैदा की जाती है, इसलिये यहां ग्रीष्म ऋतु में लोग इतना व्यस्त होते हैं कि उन्हें उत्सव का कोई ध्यान नहीं रहता है इसीलिए अधिकतर उत्सव सर्दियों में ही आते हैं। चाहे कोई भी उत्सव हो या सहभोज का आयोजन हो, खान पान का प्रथम ग्रास या बूंद भगवान बुद्ध के नाम अर्पण किये जाते हैं और उसकी स्तुति में श्लोक का उच्चारण किया जाता है। यह रिवाज भी सभी बौद्ध समाज में एक जैसा ही है।

प्राचीन काल में गोन्धला के क्षेत्र में गरीबी थी। प्राय: लोग कच्चे मकानों में जीवन यापन करते थे। मकान केवल एक ही कमरे वाला होता था। भेड़ बकरियां भी साथ रखते थे। लोग भोले भाले थे। लाहुल क्षेत्र में उन दिनों न तो स्कूल थे, न किसी प्रकार का जीविका साधन। लोग पैदल चलते थे। सड़कें भी नहीं थी। सामान प्राय: बैल या घोड़े के ऊपर ढोया करते थे। कहा जाता है कि लोग हटटे-कटटे होते थे। उन दिनों वे अधिकतर सरसों का तेल जिसे अप शब्दों में *छींगमर* कहते थे खाने के साथ प्रयोग में लाते थे।

खत जो शहर से आएगा

-दोर्जे डुरूप

पूरे प्रन्द्रह साल हो गए है फंगू को केलंग छोड़े हुए। कई बार लोगों से पता ठिकाना पूछ कर सम्पर्क करने की कोशिश की, लेकिन बेकार। न वह फोन पर मिलता है न ही चिट्ठी का जवाब देता है। इतना पता है कि उस की नौकरी शहरों की है। गांव में आने का कोई चांस नहीं। कभी कलकत्ता कभी मद्रास। मालूम नहीं पता गलत बताया गया या जानकर जवाब नहीं देता। रटांग के पार पहुंच कर हर कोई हमें भूल जाता है। फंगू, जो इतने बड़े बड़े शहरों में रहता है, उसे कहां हमारी फिकर? सुना है शादी भी वहीं कर ली है किसी बंगालन से। लेकिन कभी तो उसे मेरी याद आती होगी। आखिर साथ-साथ पले, बढ़े और पढ़े हैं हम दोनो। हमारी पारिवारिक दोस्ती थी। घर का बड़ा होने के कारण मै दस जमात से आगे न पढ़ पाया। जिम्मेवारियों का बोझ मां-बाप ने मेरे सिर पर थोंप दिया। ठीक भी है, मैंने सोचा - आखिर अब उनके आराम के दिन हैं। फंगू पढ़ता ही गया और जल्दी ही उस की नौकरी लग गई। सुना था बैंक जैसे किसी दफ़्तर में काम करता है। अच्छा कमाता है। क्या सचमुच उसे मेरी चिट्ठियां नहीं मिलती होंगी? अभी पिछली फ़्लाईट से ही एक और चिट्ठी भेजी है। इस बार तो पता एकदम ठीक है। उसके पिता जी से लिया है। क्या इस बार भी ....?

ऊलूल-जलूल विचारों को झटक कर करवट बदलता हूं। दीवार पर टंगी *एल०पी०एस०* की घड़ी चार बजे का टाईम बता रही है। टी०वी० चालू है। कोई ढीला सा सीरियल चल रहा है। उठ कर तन्दूर में कोयला बढ़ाता हूं। केलंग में रहने का यही फ़ायदा है। बाकी गांवों में यह सुविधा कहां? परसों ही घर वाली ने ऊपर वाले किराएदार को एक जोड़ा नफ़ीस पट्टू गिफ़्ट किया था, तो बदले में चार बोरी कोयले मिल गए। बेचारा भला आदमी, मंडी की तरफ का है, पी०डब्ल्यू०डी० में बेलदार। केलंग जैसी जगह में सर्दियों में करने को क्या होता है? लाला लोग दुकानदारी करते हैं, मुलाज़िम नौकरी, बच्चे स्कूल चले जाते हैं। बाकी लोग छोलो-तास में व्यस्त रहते हैं। मुझे आज छोलो में सीट नहीं मिली। कल से भारी हिमपात हो रहा है। घर वाली महिला मंडल गई है - आजकल साक्षरता अभियान के तहत अक्षर ज्ञान सीख रही है। बच्चे स्कूल से आते ही होंगे। उनके आते-आते तन्दूर गर्म रहना चाहिए। दाल की पतीली तन्दूर पर रख दूं, गर्म होती रहेगी। बेचारे दिन भर के भूखे होंगे। कैसी मीठी-मीठी भूख लगती है जब आप स्कूल से छूट कर घर पहुंचते है। मै और फंगू कैसे टूट पड़ते थे खाने पर बस्तों को एक कोने में फैंक कर .... पहले उस के घर में फिर मेरे ....। दस वर्षों के साथ में शायद ही कोई दिन ऐसा रहा होगा जब हमने साथ-साथ न खाया हो। तन्दूर का कोयला भक्क् -भक्क् जल रहा है। वातावरण बोझिल सा हो गया है, मुझे झपकियां आ रही है .... कोई दरवाज़े के नीचे से एक लिफ़ाफ़ा सरका गया है .... चिट्ठी! फंगू की चिट्ठी!! क्या सचमुच!

प्रिय मित्र, गत सप्ताह तुम्हारा पत्र मिला। घर की यादें ताज़ा हो गई। शहर की यान्त्रिक जिन्दगी में ऐसा मशगूल हो गया था कि वहां से बाहर निकलने में वक्त लग गया। देरी के लिए मुआफी चाहता हूं।

तुम्हारे पत्र ने बहुत गहरे में सोए हुए यादों के तन्तू झंकृत कर दिए। परस्पर असंबद्ध बिम्बों का एक सैलाब सा आ गया। अतीत के ये स्मृति-चित्र सिलसिलेवार न होते हुए भी बर्फ के क्रिस्टलों की तरह स्पष्ट, मीठे और ठंडे-ठार थे। अलकाथीन पाईप और फट्टों से बने देशी स्लैजों पर फिसलना, सुबह सवेरे खेतों पर जमे *खरस** पर उछलते कूदते स्कूल जाना; लोहे की मोटी तारों से बने किसी हैंगर जैसे उपकरण से चक्कों को रोल करते हुए ले जाना; खरस पर लकड़ी की गेंदों से क्रिकेटे और हाकी खेलना ..... हैरानी होती है, केलंग आज भी कमोवेश वैसा ही है।

मुझे याद है उन दिनों सर्दियों मे हमारे यहां सालाना दावतें चलती थी। माएं बुनती-बतियाती, बाप लोग जौ की (घर की बनाई हुई) शराब चुसकते, पत्ते खेलते, नन्हा गब्दू भरे हुए जामों को हसरत भरी निगाहों से देखता और हम बच्चा पार्टी कैरम खेलते। हमारी ज़िन्दगी की सब से हसीन रोमांचकारी और उत्तेजनापूर्ण शामें थी। हम छत पर से नीचे आंगन में बड़े लड़कों को रिंग जैसी चीज़ से खेलते देखते। बाप रे! वे लोग कितनी गम्भीरता से इसे खेलते।

....पन्द्रह अगस्त का जलसा- यह पहला मौका था जब मैंने बबल गम चखा। तिब्बती खोखे वाले ने इस के गुणों का बखान इतने प्रभावशाली ढंग से किया था कि मै बुरी तरह इम्प्रैस हो गया। रबर की टॉफी चबाओ और अपने मुंह के भीतर से उसका गुब्बारा फुलाओ। कमाल है। और इस कमाल के लिए मैंने बीस पैसे का सुनहरा सिक्का कुर्बान किया था। ये तिब्बती लोग भी बस ....!

---

*ख़रस् (गाहरी): मार्च, अप्रेल में जब बर्फ की ऊपरी परत जम जाती है।

और फिर गर्मियों की लम्बी छुट्टियां। काश इतनी लम्बी छुट्टियां मुझे आज मिल पाती। मै सीधे केलंग आ जाता। और हम उन दिनों की तरह गर्मियां गांव में बिताते। एक दम फ्री। कितना मजा आता! उन दिनों तो ये छुट्टियां होम वर्क के भारी बोझ से लदी होती .... दो महीने का काम! हम गांव की ओर चल पड़े हैं बिल्ली के नवजात शिशुओं से मिलने। धन्य है वह *मदर कैट* जो कितने चाव से अपना मातृत्व निभाती। पता नहीं यह संयोग था या चमत्कार कि वह हर बार छुट्टियों से बस चन्द रोज़ पहले ही बच्चे जनती। हमारे खेलने के वास्ते। और उस पर मज़े की बात यह कि वे कभी चार से कम नहीं होते। सब के लिए एक एक। जितनी देर से हमारी गोद में रहते, *होम वर्क* का बोझ महसूस ही न होता। अच्छा, याद है जब टाइम पीस का अलार्म पूरे जोर से बजता तो मारे डर के बिलौटों की टट्टी छुट जाती? हम हंसते-हंसते लाटपोट हो जाते। और फिर एक होता था हमारा चौदह साल का बूढ़ा दोस्त टॉमी। भूरा मटमैला ल्हासा *ब्रीड*। उस की निगाहों में हमारे क्रिया-कलापों के प्रति लापरवाही का भाव रहता लेकिन मैं यकीनी तौर पर कह सकता हूं कि उस की नजरों से कुछ भी न बचता। वह गम्भीर रूप से सतर्क कुत्ता था। उस की इस अजीबो गरीब फितरत के पीछे शायद उम्र का तकाज़ा था। एक कुत्ते का चौदह साल आदमी के *फोर्टी प्लस* के बराबर होता है, मैंने कहीं पढ़ा है। चालीस पार करते आदमी का क्या कुछ छिन जाता है - जवानी, जोश, हौसला, ताकत, जज़्बात - सब कुछ ही तो! बस, बड़ी हद एक दशक और। फिर हम टॉमी होगें। हर टॉमी का एक दिन होता है और वह दिन आ ही जाता है। खैर, जब टॉमी मेरे गाल चाटता तो मै मस्त हो जाता था।

हम लोग जीरा या खुम्ब इक्ट्ठा करने दूर-दूर तक जाते। बड़ी-बड़ी चट्टानों पर घंटों आकाश की ओर देखते हुए लेटे रहने का कुछ अलग की रोमांच था। वह आकाश ही कुछ अलग था। यहां के आकाश से अलग - बड़ा, निर्मल और बिलकुल पास। मुझे लगता पत्थरों पर चढ़कर छू ही लूंगा। इस बड़े आकाश पर लेह के लिए उड़ान भरते जहाज़ छोटे छोटे सुनहरी चिड़ियों से

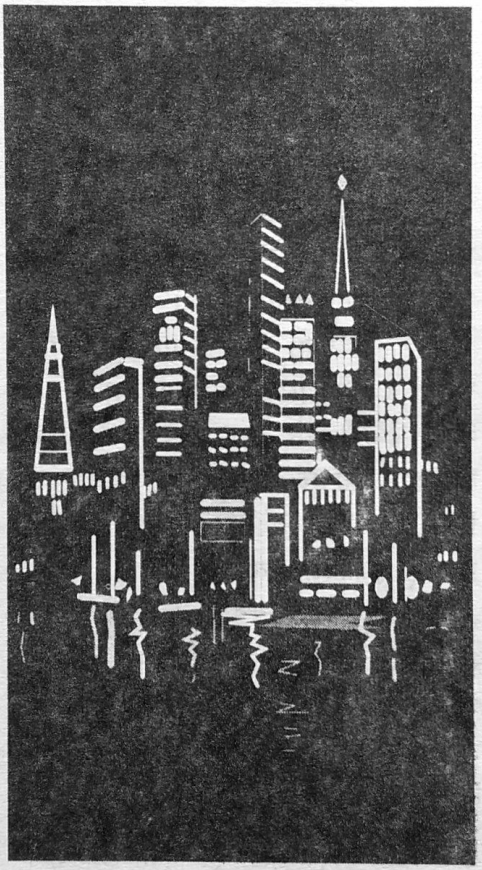

लगते। एक दिन जहाज़ों को देखते देखते मै चट्टान से गिर पड़ा था। तुम्हींने सहारा देकर उठाया था। उस दिन मुझे महसूस हुआ था कि मुझे सहारों की ज़रूरत पड़ने लगी है। कुछ बातें मैं कभी भी नहीं भूल पाता, जाने क्यों? खुम्भ ढूंढना उन दिनों का सबसे बढ़िया मनोरंजन था क्योंकि घर पहुंच कर हम में से प्रत्येक को खुम्भों के मात्रा के अनुपात में शाबाशी भी मिलती। दिन कब बीत गया पता ही नहीं चलता। हां इस अभियान में मुझे कभी-कभी घोर *कॉम्पलैक्स* हो जाता। मुझे कभी खुम्भ नहीं मिलते. तुम लोगों में खुम्भ का कोई *नैचुरल इंस्टिंक्ट* (या अनुभव?) था। तुक्के में कभी दो चार ढूंढे भी हों तो तुम्हारी सहायता से। तुम कहते - 'जरा उस तरफ देखना, उस तरफ वहां अक्सर खुम्भ मिलते हैं' और वो देखो। वो खिल रही हैं, चार खूबसूरत नन्ही छतरियां। मैं आवाक वहां देखता रह जाता। कुछ पल उन्हें उठाने का मन नहीं करता। आश्चर्यजनक और सुन्दर। छांव में खिलती छतरियां, लेकिन घर में मिलने वाली शाबाशी की याद आते ही फौरन उन्हें जेबों में ठूंस लेता। कभी-कभी मैं कोई गलत चीज़ उठा लेता। दरसअल तुम्हीं ने बताया था कि इस इलाके में खुम्भ की 21 प्रजातियां होती हैं - अधिकतर अखाद्य। काफी अरसे के बाद मैं रंग या आकार के आधार पर कुछ ही प्रजातियों को पहचानने लगा था। चितकबरी प्रजातियां सबसे कम मिला करती थी। वह सब से सुंदर होती और शायद इसी लिए अखाद्य। स्कूल में दाढ़ीदार कांग्टामुशी* ने बताया था कि वास्तव में सभी मशरूम फंगस होते हैं। लकिन ऐसा खूबसूरत फंगस भी हो सकता है, यह मैं सोच नहीं सकता था। आज भी जब इस घटना को याद करता हूं तो मुझे ग्लानि सी होती है कि तुम मुझे जान-बूझकर वे खुम्भ ढूंढने का मौका देते थे (मेरा दिल रखने के लिए) जिन्हें तुमने पहले ही देख रखे थे। क्या ऐसा नहीं है?

हां, एक और बात का मुझे मलाल है कि मैं स्कींग कभी सीख न पाया। शायद यह मेरे *टेम्परामेंट* से मेल

*कांग्टामुशी - कांगड़ा के इलाके का अध्यापक

नहीं खाता। हालांकि आज लगता है कि केलग रहते हुए थोड़ी पूरी सीख रखनी चाहिए थी। ....केलंग छोड़ने के बाद मेरी जिन्दगी में कुछ बड़े बदलाव आए। यह वह जगह थी जब मैंने अपने आस-पास कुछ 'अपने' लोगों का अस्तित्व समझना शुरु किया था। ज़िन्दगी में पहली बार मैंने जुदाई का दर्द महसूस किया जब मैं केलंग छोड़कर मनाली उतरा। मेरे लिए यह बिल्कुल दूसरी दुनिया थी। एक दम नई - शोर-शराबे से भरी, असहनीय हरियाली, भारी ट्रैफिक, बड़ी और तेज़ गति की बसें, और हास्यास्पद स्कूटर (आकार में भी, आवाज़ में भी)! मैंने पहली बार एक पुरानी लम्ब्रेटा को हॉर्न सुनी थी - मानो किसी ने टेंटुआ दबा रखा हो। ताज़ा पके ब्रेड, ताज़े फल (केले में से कैसी गंदी मुश्क आती थी), बरसात की उमस! उफ, कितनी गर्मी! मै वापस जाना चाहता था - और आज मै यहां हूं! भारत की सबसे व्यस्त महानगरी में। मुम्बई गर्म है और जल्दबाज़ी से भरी। चारों ओर मलमूत्र की दुर्गन्ध! आबादी दो करोड़! रोटी कमाने के लिए पचास लाख जने रोज़ाना ट्रेन में सफर करते हैं और मै भी उन में से एक हूं। मेरा दफ़्तर मेरे आवास से चालीस किलोमीटर दूर है। वहां पहुंचने में पूरे दो घण्टे लगते हैं। मेरा दिन का शेड्यूल कुछ ऐसा है-

सुबह आठ बजे की बस पकड़ता हूं। 8:29 पर ट्रेन पर चढ़ता हूं। फिर 9:30 वाली बस पकड़ता हूं जो मुझे ठीक 10 बजे दफ़्तर पहुंचा देती है। दफ़्तर में तीन हज़ार कागज़ों को जांचता हूं, उन पर साइन करता हुं, एक सौ पचास बन्दों से मिलता हूं, दिन भर खूब सारी चाय पीता हूं, 5:30 पर दफ़्तर छोड़ देता हूं। 5:53 की ट्रेन पकड़ता हूं, फिर 7:15 वाली बस मुझे आठ बजे घर पहुंचा देती है। घर पहुंचने पर शॉवर, खाना, फिर सो जाना। अगली सुबह उठते ही फिर वही रूटीन शुरु। कितना कंट्रास्ट है इस रूटीन और मेरे बचपन के पालन पोषण में - कुठाड़, काज़ा, कल्पा, केलंग, किलाड़, कुल्लू, कुमाऊं.... फिर अचानक दिल्ली, मद्रास, मुम्बई...।

मेरी वेस्टलाइन बयालीस की हो गई है और वज़न पचहत्तर किलो। बीयर सस्ती है। इधर आस पास में कुछ कम भीड़ वाले, अपेक्षाकृत साफ सुथरे, अच्छे *बीच* है। बनाओ यार इधर का एक ट्रिप, पुरानी यादें पूरी करेंगे। दिल्ली से सेकिन्ड क्लास ए॰सी॰ के पन्द्रह सौ लगते हैं। कम्प्यूटरों से छेड़खानी जारी है। दिलचस्पी हो तो लिखना। क्या केलंग में इन्फ़रमेटिक्स सेंटर खुल गया है? मेरे ख्याल में उनके पास निकनेट का कनैक्शन होगा। वहां का *क्लाईंट आई॰डी॰* भेजना। निकनेट पर मेरा ई॰मेल एड्रेस है - NIC @ BOM F--I-N-C-H--- FAX 05, 986, 2257--- TSN-- जल्दी कीजिए, ऑफ़र केवल एक महीने के लिए.... धम्म! ....रोटी किन्ना... औरों से बड़ा आकार... वाजिब कीमत... धम्म... धम्म... अवा... आऽऽवाऽऽ ...जल्दी खोलो ... धम्म... तुम्हारा दोस्त फंगू... धम्म! धम्म! ...दो हाज़ार रुपए में केवल ज़ी टी॰वी॰ पर... जल्दी... आवा... भूख लगी है...

... तन्दूर लाल हो चुका है। दाल जल रही है। कमरा धुएं से भरा है। बच्चे दरवाज़े पर घूंसे मार रहे हैं। टी॰वी॰ पर कमर्शियल चल रहे हैं ... कहां गया फंगू का खत? यह ख्वाब था? तो क्या इस बार भी फंगू जवाब नहीं देगा? नहीं। वह ऐसा नहीं कर सकता। मेरा ख्वाब सच होगा! शहर से खत आएगा। ज़रूर आएगा।

लेखक बन्धुओं,

जैसा कि आप को ज्ञात है लाहुल स्पीति की लोक कला, साहित्य व संस्कृति को सही रूप में सामने लाने व लुप्त होती लोक विधाओं को संरक्षित करने व पुनर्जीवित करने तथा आस-पास की अन्य हिमालयी संस्कृतियों के साथ तुलनात्मक विवेचना द्वारा आत्म परिष्कार आदि के उद्देश्यों को लेकर "चन्द्रताल" का प्रकाशन आरम्भ किया गया था। सभी लेखक बन्धुओं से आग्रह है कि अपने हर प्रकार के लेख व कोई भी साहित्यिक रचना "चन्द्रताल" में प्रकाशनार्थ भेज कर हमारे इस अनुष्ठान को आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दें। हिमाचल के सभी लेखक बन्धुओं से निवेदन है कि वह अपने इलाके की संस्कृति से सम्बन्धित लेख "चन्द्रताल" के लिए भेज कर हमें प्रोत्साहित व अनुगृहीत करें। लेख भेजते समय कृपया इस बात का विशेष ध्यान रखें कि लिखाई साफ-साफ हो जिसे आसानी से पढ़ा जा सके, लिखते समय पंक्तियों के बीच डबल दूरी दें अर्थात् एक पंक्ति छोड़ कर लिखें तथा पन्ने के एक ही ओर लिखें क्योंकि दोनों ओर लिखे पन्ने मुद्रण प्रक्रिया में विघ्न पैदा करते हैं। "चन्द्रताल" के पृष्ठ हर प्रकार के लेखकों व पाठकों के लिए खुले हैं। हमारा आग्रह है कि आप लोग ज़रा भी न हिचकें। पाठकगण हमें अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराते रहें।

धन्यवाद!

संपादक

शिव टिब्बा

-प्रेम शावला

सारी लाहुल घाटी देवी देवताओं के नाम से विश्व विख्यात है। इन ऊंची-ऊंची हिमाच्छादित पर्वत मालाओं के सुरम्य घाटी के दिलकश नज़ारे अपनी ओर सहजता से ही आकर्षित करते हैं। यहां कई एतिहासिक स्थल है पर्यटन स्थल है और कई देवालय गोम्पा मन्दिर इत्यादि हैं। जो यहां की शोभा को बढ़ा रहे हैं। गोम्पा मन्दिर आदि का इस क्षेत्र में विशेष महत्व है जो माला में गुंथे हुए मनकों ही भान्ति प्रतीत होते हैं। स्वतन्त्र रूप से हर मनके की अपनी एक अलग पहचान दिखाई देती है परन्तु से एक माले का रूप धारण करके आत्मिक शक्ति परस्पर सहयोग भाईचारा और सामुदायिक एकता की भावना को पूर्ण रूप से उजागर करता है।

लाहौल के ''चन्द्रा'' घाटी में स्थित ग्राम पंचायत खांगसर के शुलिंग गांव में स्थापित ''शिव टिब्बा'' अनायास की राहगीरों को व देश विदेश से आए हुए पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह स्थान मनाली-लेह मार्ग पर सिस्सू से आगे छः कि०मी० की दूरी पर स्थित है। इस टिब्बे के शीर्ष विन्दु पर शिव-मन्दिर है जो कि इस क्षेत्र के पर्यावरण और प्राकृतिक छटा को चार चांद लगा रहा है। इस उठी हुई भूमि की रचना पर ध्यान से दृष्टिपात करें तो यह पठार या चौगान जैसी लगती है। गांव की ओर पार्श्व भाग में यह चट्टानों द्वारा निर्मित है व ठीक दूसरी ओर का भाग उठे हुए भूखण्ड के रूप में दिखाई देता है। इसके शीर्ष तक पंहुचने में लगभग 20 मिनट पैदल चलना पड़ता है। गन्तव्य स्थान पर पहुंच कर दूर-दूर तक की दिशाएं बिना किसी बाधा के नज़र आने लगती हैं। बहुत सुन्दर और मन को हर्षा लेने वाले दृष्य दृष्टिकोण होने लगते है। जिसके परिणम स्वरूप हमें अपनी कल्पना की दुनिया में विचारने और नाना प्रकार के लौकिक और आलौकिक अभिलाषा को जन्म देने में मज़बूर कर लेता है, मन को आत्मिक शान्ति व सुखद की अनुभूति का आभास स्वत: की होने लगता है। इन विशेष गुणों से परिपूर्ण होने के कारण ही इस स्थल को *''शिव टिब्बा''* का नाम दिया गया, जो बिल्कुल सटीक व दैविक शक्ति से पूर्ण लगता है।

शिव मन्दिर की उत्पत्ति क्यों हुई, कैसे हुई? इस का विस्तार से

स्थानीय पुजारी जो मन्दिर का स्वयं ही संचालन कर रहा है के कथानुसार शुलिंग और शिवलिंग यह दो शब्द परस्पर मेल खाते हैं। (अत: यहां प्राचीन सत्य में शिव मन्दिर होने का छोटा सा तार्किक प्रमाण है)।

वर्णन किया जा रहा है। सन् 1994 की बात है, इसी गांव के निवासी श्री मान दास (पुजारी) को अवचेतन अवस्था से स्वप्न आया कि इस भू-क्षेत्र के परिधि में मन्दिर से सम्बन्धित वस्तुएं है, इसे बाहर निकालो ओर स्थापित कर दो। उसे यह भी स्वपन हुआ कि कोई नारी शक्ति के रूप में उस से साक्षातकार करती है कि इस जगह का प्राचिन नाम *''शान्तपुर''* है। सपने के आधार पर ही मानदास ओर उस के परिवार के बड़े की चाव ओर आत्मीयता से उस भू-भाग को खोदना शुरू कर दिया। उनकी मेहनत रंग लाई व कुछ वस्तुएं उन्हें मिली। जिसमें शिव पिण्डी *(शिव लिंग)* और एक अनोखे प्राचीन पत्थर का टुकड़ा मिला, जो दिखने में छोटा व उठाने में काफी भारी लगता था। कुछ समय बाद खुदाई में उसी पत्थर का एक और टुकड़ा मिला। स्थानीय पुजारी जो मन्दिर का स्वयं ही संचालन कर रहा है के कथानुसार शुलिंग और शिवलिंग यह दो शब्द परस्पर मेल खाते हैं। (अत: यहां प्राचीन सत्य में शिव मन्दिर होने का छोटा सा तार्किक प्रमाण है)। ज़िला मुख्यालय केलंग से प्रशासन द्वारा इस मन्दिर के निर्माण कार्य हेतू आर्थिक सहायता प्रदान की गई परन्तु अभी इस के परिसर में बहुत कुछ अधूरा पड़ा है। मन्दिर के परिसर में परियोजना को सही अर्थो में क्रियान्वयन के लिए दिशा निर्देश व आर्थिक सहायता की आवश्यकता महसूस की जा रही है। अत: समस्त लाहुल के जन समुदय, बुद्धि जीवियों व विद्वानों से सहर्ष प्रार्थना है कि इसे और अधिक नया रूप एवं नवीन चेतना जगाने के लिए सहयोग दें।

इस पावन स्थल की कई कर्म योगी, सिद्ध पुरूष व आधयात्मिक व्यक्ति आए। अपने मधुर कन्ठो से ओर सन्तों की वाणी द्वारा स्थापित हुई *''शिव-टिब्बा''* मणीमहेश जी व घोशाल के अध्यात्मिक गुरू महाराज जी अपने सहयोगियों के साथ इस पावन स्थल की शोभा बढ़ाने आए और अपने अमृत रूपी वाणी से अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने का उपदेश दिया।

वह दिन दूर नहीं जब इस *''शिव-टिब्बा''* की महत्व और ख्याति हिमाचल के मानचित्र पर अंकित होगा वह पर्यटन की की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण स्थल सिद्ध हो सकता है।

पंजीयन संख्या 65373/94.

सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860 के अधीन पंजीकृत संख्या ल०स०/42/93

स्वंगला एरतोग

लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हतु
सोसाइटी (रजि०), पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर
ढालपुर, कुल्लू 175 101 (हि०प्र०) भारत

उद्देश्य :

1. सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुनर्जीवित व संवर्धित करना।
2. लोक विधाओं को चिह्नित करना जो लुप्त होने के कगार पर है।
3. साहित्यिक रुचियों का विकास व सृजन के प्रति रुझान पैदा करना।
4. सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच बनाना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

चन्द्रताल में विज्ञापन दें

आज चन्द्रताल त्रैमासिक पत्रिका अति लोकप्रिय होती जा रही है।

इसके पाठकगण की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जो समाज के हर पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखते हैं।

आज इस पत्रिका की 2000 से ज्यादा प्रतियां लाहुल-स्पीति और हिमाचल प्रदेश के विभिन्न लोगों द्वारा पढ़ी जाती हैं।

अत: आप अपने उत्पाद व व्यवसाय को अगर बढ़ाना चाहते हैं, तो इस पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं।

चन्द्रताल की विज्ञापन दरें

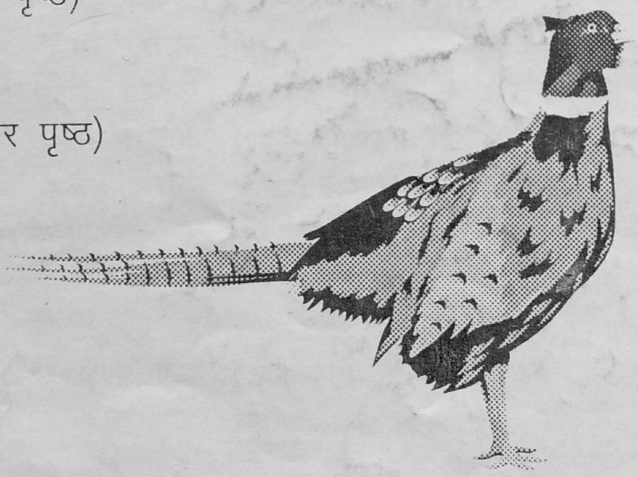

आवरण (भीतर पृष्ठ)	7,500.00
बैक कवर	10,000.00
बैक कवर (भीतर पृष्ठ)	7,500.00
पूर्ण पृष्ठ	5,000.00
अर्ध पृष्ठ	3,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,000.00
शुभ कामनाएं	250.00

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा नमन, कुल्लू से टाईप सेटिंग तथा मुद्रित एवं (नीरामाटी) कुल्लू, स (हि०प्र०) से प्रकाशित। संपादक सुश्री छिमे शाशनी।